वैज्ञानिक चिंतन की आवाज़

तर्कशील पथ

TARKSHEEL

मार्च-अप्रैल 2023

अंदर पढ़े :

भाग्य और भगवान कमजोर मनो को तसल्ली देने के बहाने हैं - शहीद भगत सिंह

वो एक खेत था....

मन्दिर से पहले मस्जिद थी
मस्जिद से पहले मन्दिर था
उस मन्दिर से पहले क्या था
एक खेत था शायद
धान का होगा या गेहूँ का
सबकी भूख से रिश्ता था
भूख का कोई मज़हब नहीं है

वो खेत कब का ज़ब्त हुआ
उस खेत के लिए कौन लड़ेगा ?

खेत से भी पहले क्या था
अल्लाह राम के नाम से पहले
क़ाबा काशी धाम से पहले
राम-राम सलाम से पहले
शायद घना एक जंगल था
जँगल में सब मंगल था
आदम अभी आदमी नहीं था
उसे आग लगानी नहीं आती थी
आग का कोई मज़हब नहीं है

वो जँगल जल कर राख़ हुआ
उस जँगल के लिए कौन लड़ेगा ?

जंगल से भी पहले क्या था
साँ साँ करता कहकशाँ था
हरसूँ सिर्फ़ धुआँ धुआँ था
तूँ कहाँ था, मैं कहाँ था
ना को हिन्दू ना मुसलमाँ था
ना किसी का नामो निशाँ था
बेनामोनिशाँ का कोई मज़हब नहीं था

वो कहकशाँ अब दैरो हरम हुआ
कहकशाँ के लिए कौन लड़ेगा !

– सरबजीत सिंह बहल

मुख्य संपादक
बलबीर लौंगोवाल
balbirlongowal1966@gmail.com
98153 17028

संपादक
प्रा बलवंत सिंह
tarksheeleditor@gmail.com
94163 24802

विदेशी प्रतिनिद्धि
अवतार गिल, कनेडा
अछर सिंह खरलवीर, कवैंटरी (इंगलैंड)
(+44 748 635 1185)
मा. भजन सिंह कनेडा, बलदेव रहिपा, टोरांटो

पत्रिका शुल्क :-
वार्षिक : 150/- रू.
विदेश : वार्षिक : 40 यू.एस.डॉलर
रचनाएं, पत्र व्यवहार व शुल्क भेजने के लिए पता:
मुख्य कार्यालय
तर्कशील भवन, संघेडा बाईपास
तर्कशील चौंक, बरनाला-148101
01679-241466, 98769 53561
tarkshiloffice@gmail.com
पत्रिका को पढ़ने के लिए लॉग ऑन करें:
www.tarksheel.org
Tarksheel Mobile App :
Readwhere.com

प्रा. बलवंत सिंह, प्रकाशक, मुद्रक, स्वामी, संपादक, मकान न. 1062, आदर्श नगर, पिपली, जिला कुरूक्षेत्र-136131 (हरियाणा) द्वारा अप्पू आर्ट प्रैस, शाहकोट से मुद्रित करके तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा के माध्यम से वितरण हेतु जारी किया।

तर्कशील पथ पत्रिका हेतु शुल्क
पंजाब नैशनल बैंक में
तर्कशील सोसायटी पंजाब (रजि.) के नाम से
खाता सं. 0044000100282234
IFSC: PUNB0004400
में जमा करा सकते है।
एंव पत्रिका भेजने के लिए एड्रेस व शुल्क की स्क्रीन शॉट/रसीद मोबाइल नम्बर +91 98156 70725 पर वट्सएप कर दें।

इस अंक में

संपादकीय

हाल ही में हरियाणा के भिवानी जिले में आग से जली एक बोलेरो जीप में दो मुस्लिम युवकों के जले हुए शव मिले थे। गौरक्षा के नाम पर राजस्थान के भरतपुर जिले से अगवा किए गए इन युवकों को जलाने की घटना मानवीय संवेदनाओं को झकझोर कर रख देती है। मृतक के परिजनों का आरोप है कि बजरंग दल के कार्यकर्ताओं और पुलिस कर्मियों ने पहले इन युवकों का अपहरण किया, फिर मारपीट कर उनकी हत्या कर दी और अंत में उनके शवों को जला दिया। धर्म के नाम पर ये इक्का-दुक्का हत्याएं नही हैं, देश में पूर्व में हुए कई संगठित धार्मिक दंगों में साम्प्रदायिक ताकतों और पुलिस की मिलीभगत का खुलासा हुआ है। सवाल यह है कि ऐसे में लोग अपनी सुरक्षा के लिए किस पर भरोसा करें? सत्ता के संरक्षण में सांप्रदायिक समूह देश में बड़े पैमाने पर सक्रिय हैं। देश के दो प्रमुख धर्मो हिंदू और मुसलमानों के बीच सांप्रदायिक जहर को घोलने और मुसलमानों को जनता के सबसे बड़े दुश्मन के रूप में चित्रित करने का हर संभव प्रयास किया जा रहा है। हर धर्म में अच्छे और बुरे लोग हो सकते हैं। क्या गौरक्षा के नाम पर कानून को हाथ में लेने दिया जा सकता है? यह अधिक हो रहा है कि जिन लोगों को कानून के अनुसार काम करना है, वे हत्यारों से मिलीभगत कर रहे हैं। अगर ये पिटे, जलाए गए युवक पशु तस्करी में शामिल थे तो इन्हें कानून के मुताबिक सजा मिलनी चाहिए थी, लेकिन ये 'तत्काल न्याय' देश की सत्ता, कानून व्यवस्था, अदालतों, पुलिस पर गंभीर सवाल खड़ा करता है. सत्ता की ताकतों द्वारा सांप्रदायिक तूफान को तेज किया जा रहा है। सांसद प्रज्ञा सिंह ठाकुर का बयान है, ''अपने घरों में हथियार रखो। और कुछ नहीं तो कम से कम चाकू की धार तेज रखो। पता नहीं कब स्थिति बन जाए।'' देश के लिए यह बहुत खतरनाक होगा। देश के नौजवानों को जो शिक्षा को बड़े कार्पोरेट्स के हवाले करके, सावर्जनिक क्षेत्र में से रोजगार खत्म करके उद्देश्य हीन बनाया जा रहा है, उन नौजवानों को अपने राजनीतिक हितों के लिए उपयोग करने के लिए साम्प्रदायिकता की तरफ धकेलते रहना देश के लिए घातक सिद्ध होगा। लोकहित शक्तिओं की यह जिम्मेदारी बनती है कि युवाओं को सही और गलत रास्ते से अवगत करा कर उच्च मूल्यों वाला समाज बनाने का मार्ग प्रशस्त किया जाए। शहीद भगत सिंह ने कहा था: नौजवानों! उठो! युग बीत गए, तुम को सोए। धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों, अंध राष्ट्रवादियों आदि के नशे से बेहोशी की गहरी नींद में धकेले जा रहे युवाओं को जगाने के लिए-आइए, युवाओं से हर पल, हर दिन संवाद करें....।

झाड़फूंक

ज्ञान प्रकाश गुप्ता

विज्ञान की प्रगति के इस युग में भी आज भारत में अनेक रोगों का इलाज लोग झाड़फूंक से कराते हैं। खेद का विषय तो यह है कि कुछ पढ़े लिखे लोग भी झाड़फूंक में विश्वास करते हैं। आखिर क्या कारण है कि झाड़फूंक में कुछ न होते हुए भी लोग इस पर विश्वास करते हैं।

एक बहुत बड़ा भ्रम लोगों में यह है कि रोग किसी न किसी उपचार से ही ठीक होते हैं। वे यह नहीं समझते कि बहुत से रोग अपने आप बिना किसी इलाज के ठीक हो जाते हैं। इस भ्रम का नतीजा यह होता है कि यदि कोई रोग झाड़फूंक के बाद ठीक हो जाता है तो वे यह समझते हैं कि रोग झाड़फूंक से ही ठीक हुआ है और उन की आस्था झाड़फूंक में बढ़ जाती है, झाड़फूंक उन रोगों में अधिक प्रचलित है जो अपने आप ठीक हो जाते हैं।

पीलिया (काबर या पांडु) के विषय में तो यह आम धारणा है कि यह झड़वाने से ठीक हो जाता है। पीलिया एक रोग नहीं है, बल्कि यकृत अथवा पित्त की थैली से संबंधित अनेक रोगों का लक्षण हो सकता है। भारत में पीलिया अधिकतर इनफेक्टिव हेपेटाइटिस के कारण हो जाता है। यह रोग एक बहुत छोटे जीवाणु (वायरस) से होता है। यह जीवाणु दूषित खाद्यपदार्थ अथवा दूषित पानी के द्वारा शरीर में पहुंच कर यकृत में सूजन पैदा कर देता है, जिस के कारण पीलिया हो जाता है।

भारत में स्वच्छता की अच्छी व्यवस्था न होने के कारण यह रोग प्रति वर्ष बहुत अधिक फैलता है। इस रोग की अवधि आम तौर से तीन से पांच सप्ताह की होती है और लगभग 90 प्रतिशत रोगियों में यह इतने समय के अंदर बिना किसी उपचार के अपने आप ठीक हो जाता है, केवल दस प्रतिशत लोगों में अन्य विकार (कांपलीकेशंस) उत्पन्न होते हैं, जो कभी-कभी जीवन के लिए घातक हो सकते हैं।

ऐसी दशा में पीलिया झाड़ने वालों की खूब चांदी बनती है। उन के पास जो पीलिया के रोगी जाते हैं, अधिकतर इनफेक्टिव हेपेटाइटिस के होते हैं और एक दो को छोड़ कर सभी ठीक हो जाते हैं, ठीक होने वाले व्यक्ति इस बात का प्रचार अपने मित्रों में करते हैं और झाड़फूंक करने वालों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जाती है। यदि कोई यह काम बिना पैसे के करता है तब तो फिर कहना ही क्या, लोगों का विश्वास और भी दृढ़ हो जाता है। इसी प्रकार यदि कभी किसी ने कह दिया कि अमुक कुएं या तालाब में स्नान करने से पीलिया ठीक हो जाता है और यदि कुछ रोगी उस में स्नान कर के ठीक हो जाएं तो वहां दूर-दूर से लोग आने लगते हैं।

डॉक्टरों के पास ऐसी दवाएं अभी नहीं है जिन से इनफेक्टिव हेपेटाइटिस तीन चार सप्ताह के स्थान पर तीन चार दिन में ठीक हो सके, ताकि लोगों का विश्वास झाड़फूंक से टूट जाए। वायरस से फैलने वाले रोगों के लिए अभी संतोषजनक दवाएं तैयार नहीं हो पाई हैं। जब ऐसी दवाएं तैयार हो जाएंगी, लोग पीलिया का इलाज झाड़फूंक से कराना स्वयं ही छोड़ देंगे।

आप कहेंगें कि यदि डाक्टर के इलाज से भी इनफेक्टिव हेपेटाइटिस ठीक होने में तीन चार सप्ताह लगते हैं और झाड़फूंक करवाने पर भी इतना ही समय लगता है तो महंगा डाक्टरी इलाज न करवा कर झाड़फूंक कराने में ही क्या हानि है? इस के उत्तर में मैं दो सच्ची घटनाओं का उल्लेख करूँगा:

मेरे एक पड़ोसी की लड़की अपनी ससुराल से आई। उसे छः सप्ताह से पीलिया था। पड़ोसी उसे इलाज के लिए मेरे क्लीनिक पर लाए। क्योंकि पीलिया उसे छः सप्ताह से था इसलिए जाहिर था कि या तो उस का पीलिया इनफेक्टिव हेपेटाइटिस के कारण न हो कर किसी और रोग की वजह से था या फिर इनफेक्टिव हेपेटाइटिस में ही कोई और विकार उत्पन्न हो गया था। मैंने उनको सलाह दी कि ऐसी दशा में वह उसे अस्पताल में दाखिल करवा दें, जिस से रोग की सही जांच व उचित इलाज हो सके।

उस समय मेरे क्लीनिक में मोहल्ले के एक और सज्जन भी बैठे हुए थे। उन्होंने फौरन उन को मशविरा दिया कि उन्हें अस्पताल जाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि

वह एक ऐसे अनुभवी झाड़ने वाले को जानते हैं जिस ने पीलिया के सैंकड़ों रोगियों को ठीक कर दिया है और वह उनकी लड़की को भी शर्तिया ठीक कर देगा।

वह बेचारे आ गए उनके कहने में और उन्होंने अपनी लड़की को सुबह शाम झाड़ने वाले के यहां पैदल ले जाना शुरू कर दिया। किसी ने उन्हें बाराबंकी के पास बिबियापुर गांव के कुएं पर ले जा कर नहलाने की सलाह दी। वह लड़की को मोटर से वहां ले गए। लेकिन रास्ता खराब होने के कारण उन्हें एक डेढ़ मील पैदल चलना पड़ा। पीलिया में आराम बहुत ही आवश्यक होता है। शारीरिक परिश्रम से हिपेटिक कोमा, जिस में बेहोशी आ जाती है, होने की संभावना रहती है। उस लड़की को भी यही हुआ। उसी रात को वह बेहोश हो गई और जब उसे अस्पताल ले जाया जा रहा था तो रास्ते में ही उस की मृत्यु हो गई।

दूसरी घटना इस प्रकार है : मेरे एक मित्र के पिता जी को पीलिया हो गया। मैंने उन्हें देखा तो मुझे संदेह हुआ कि उनका पीलिया पित्त की नली में किसी रुकावट होने के कारण है। मैंने उनको अस्पताल में भरती करवा दिया। जांच के बाद पता चला कि एक बदगोश्त (कैंसर) की शुरूआत है जिससे पित्त की नली पर दबाव पड़ रहा है।

डॉक्टरों ने आपरेशन द्वारा बदगोश्त को शीघ्र ही निकलवा देने की सलाह दी, लेकिन उनके कुछ मिलने वालों ने समझाया कि आपरेशन करवाने से पहले पीलिया झड़वाकर देख लें क्योंकि यह रोग तो झड़वाने से ही जाता है। वह उनके कहने में आ गए और अस्पताल से जबरदस्ती छुट्टी ले कर झाड़ फूंक करवाने लगे।

उनका पीलिया अपने आप ठीक होने वाली इनफेक्टिव हेपेटाइटिस के कारण तो था नहीं, जो झड़वाने से ठीक हो जाता, इसलिए दिन पर दिन बढ़ता गया और वह एक के बाद दूसरे झाड़ने वाले के घर के चक्कर काटते रहे। जब दो मास इस तरह निकल गए तो वह झाड़फूंक से निराश हो कर फिर आपरेशन के लिए अस्पताल में पहुंचे।

पर अब बदगोश्त इतना फैल चुका था कि उसे आपरेशन द्वारा निकाल पाना असंभव था। इसलिए डॉक्टरों ने उपचार करने से इनकार कर दिया। दो मास के अंदर ही उनकी मृत्यु हो गई।

अगर यह झाड़फूंक का चक्कर न होता तो इन दोनों रोगियों की जानें बच गईं होतीं।

पीलिया के अतिरिक्त कुछ अन्य रोगों में भी झाड़फूंक अधिक प्रचलित है। कर्णफेर (गलसुए) में बहुत से लोग पीपल के पत्ते पर मंत्र लिखवा कर बांधते हैं। कर्णफेर आम तौर से लगभग एक सप्ताह में अपने आप ठीक हो जाते हैं। लोग समझते हैं कि उनका रोग मंत्र के कारण ठीक हुआ है, जबकि वास्तविकता यह है कि यदि उन्होंने बिना लिखा हुआ पत्ता या केवल रुई ही बांधी होती तो भी उन का रोग उतने ही समय में ठीक हो जाता है।

इसी प्रकार अर्धांगी में, जिस में शरीर के आधे भाग में महीन-महीन छाले निकल आते हैं, लोग कुम्हार के यहां की मिट्टी पढ़वा कर लगाते हैं। यह भी वायरस से फैलने वाला एक रोग है और लगभग दो तीन सप्ताह में अपने आप ठीक हो जाता है, लेकिन झाड़फूंक इस में भी चलती है।

फालिज (लकवा) में भी लोग झाड़फूंक करवाते हैं। फालिज गिरने के अलग-अलग कारण होते हैं। प्रायः फालिज में सब से अधिक कमजोरी आरंभ में होती है और जैसे-जैसे समय बीतता है, फालिज वाले अंग में कुछ कुछ शक्ति लौटने लगती है। लोग गलतफहमी में रहते हैं कि यह लाभ झाड़फूंक से हो रहा है।

सब से अधिक दुःख तो उन रोगियों को देख कर होता है जिन का रोग इलाज से जल्दी ठीक हो जाने वाला होता है लेकिन झाड़फूंक के चक्कर में पड़ कर वे वर्षों कष्ट उठाते हैं या रोग को असाध्य बना कर डॉक्टर के पास आते हैं। गांव वाले तो शायद हर रोग का इलाज झाड़फूंक से कराते हैं और कभी-कभार रोगी की दुर्दशा कर के ही डॉक्टर के पास लाते हैं।

झाड़फूंक के तरीके भी विचित्र होते हैं। रोगियों की बांह में तावीज बंधे होना तो साधारण सी बात है। निमोनिया से पीड़ित बच्चों की पसलियों पर काजल की लकीरें बनाई जाती हैं। मिरगी का दौरा पड़ने पर रोगी को जूता सुंघाया जाता है। कुछ कमजोर बच्चों की पीठ या सिर में मैंने विचित्र प्रकार से जलने के निशान देखे, जो बच्चों को सूखे की बीमारी होने पर झाड़ने वालों ने गरम ठप्पे लगा कर बनाए थे।

शेष पृष्ठ 12 पर

अवैध संबन्धों के चलते

बलवंत सिंह

सतपाल और मोनिका की शादी को 7-8 साल बीत चुके थे। पहले कुछ समय तक उनके घर के हालात सामान्य रहे थे। उनकी 5-6 एकड़ कृषि योग्य जमीन थी। सतपाल का पिता अपनी जमीन पर खेतीबाड़ी करता था और सतपाल ने अपनी बी.ए. की पढ़ाई बीच में ही छोड़ कर ड्राईवरी सीख ली थी। अब वह एक कंपनी में कार ड्राईवर की नौकरी करने लग गया था। सतपाल की बड़ी बहन की शादी पहले ही हो चुकी थी। सतपाल अकेला भाई होने के कारण अब उनका छोटा सा परिवार प्रसन्नता पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहा था।

एक दिन सतपाल का पिता किसी जरूरी कार्य के लिए शहर गया हुआ था। शहर से वापिस आते हुए किसी गाड़ी वाले ने उसे टक्कर मार दी और अपनी गाड़ी लेकर फरार हो गया। वह काफी समय तक अत्यधिक घायल अवस्था में सड़क के किनारे पर तड़पता रहा। जब तक परिवार वालों को उसके एक्सीडेंट के बारे में पता चला तब तक उसका काफी अधिक खून बह चुका था। सतपाल मृतप्राय: अवस्था में उसे अस्पताल ले कर पहुँचा, परन्तु डाक्टरों ने चैकअप करने के पश्चात् उसे मृत घोषित कर दिया।

अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् सतपाल ने उसके देहान्त से संबंधित सभी धार्मिक एवं सामाजिक रस्मों को पूर्ण किया और सभी अपने-अपने कार्यों में व्यस्त होते चले गये। सतपाल अपनी कार-ड्राईवर की नौकरी पर जाने लग गया। मोनिका अपने छोटे से बच्चे तथा अपनी सास के साथ घर का काम संभालने लग गई। मोनिका ने सिलाई-कढ़ाई एवं फैशन-डिजाइनिंग का काम सीखा हुआ था, अत: उसने पहले तो अपने घर पर ही लोगों के कपड़ों की सिलाई का कार्य शुरू कर दिया। गांव स्तर पर उसका काम महिलाओं को काफी पसन्द आने लग गया। कई लोगों ने उसे पास वाले कस्बे में अपना बुटीक खोलने की सलाह दी। मोनिका के मन में भी नजदीकी कस्बे में अपनी बुटीक खोलने की इच्छा बलवती होती चली गई। उसने इस बाबत अपने पति से सलाह ली और कस्बे में किराये की दुकान का पता करने के बारे में अनुरोध किया। परन्तु सतपाल ने उसकी बातों की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। फिर भी मोनिका ने अपनी हिम्मत नहीं हारी और उसने कस्बे में अपनी बुटीक खोलने के बारे में अपने पास आने वाली महिलाओं से इस बाबत पता लगाने के लिये अनुरोध करना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे यह बात महिलाओं द्वारा उनके घर वालों तक पहुँची और एक दिन उसकी जानकार महिला ने बताया कि उसके पति को कसबे में एक दुकान के बारे में पता चला है परन्तु दुकान का मालिक उस के लिये पाँच लाख पगड़ी के तौर पर मांग रहा है। रात को जब सतपाल घर में वापिस आया तो मोनिका ने उस से दुकान के बारे में बात की परन्तु सतपाल ने इस मामले में कोई दिलचसपी नहीं दिखाई। अत: मोनिका ने जलभुन कर उसे खरी-खोटी सुनाना शुरू कर दिया।

उसके पश्चात् उनके घर में कभी सास-बहू का और कभी पति-पत्नी का झगड़ा होना आम बात हो गई। रोज़ाना के झगड़े से तंग आ कर सतपाल ने कई-कई दिनों तक घर से बाहर रहना शुरू कर दिया। अब घर में विचित्र सी घटनाएं घटनी शुरू हो गई। एक दिन अल्मारी में रखा हुआ मोनिका का एक सूट कटा हुआ मिला। फिर कुछ दिनों बाद सतपाल की जींस की पैंट भी कटी हुई मिली। एक दिन घर के आंगन में कपड़ों को धो कर सुखाने के लिए एक रस्सी पर टांगा हुआ था। जब शाम को मोनिका की सास उन कपड़ों को उठा रही थी तो उसने देखा कि उस का एक नया सूट बीच में से कटा हुआ था। ऐसी घटनाओं को देख कर वे अत्यधिक परेशान हो उठे। इस समस्या के समाधान के लिए किसी परिचित के कहने पर सास-बहू दोनों पास के गांव में एक बाबा की शरण में पहुँच गई। बाबा उन दोनों से सारी

कहानी सुनने के पश्चात् अपनी आंखें बंद करके समाधि की मुद्रा में बैठ गया। फिर थोड़ी देर के बाद उसने अपनी आंखें खोली और अत्यन्त चिंतातुर आवाज में उसने उन्हें बताया कि उनके घर पर किसी ने भयंकर जादू-टोना करवाया हुआ है और उसी जादू-टोने के नकारात्मक प्रभाव के कारण उनके घर में ऐसी घटनाएं घटित हो रही हैं। जादू-टोने के प्रभाव से बचाव के तौर पर उस बाबा ने उनसे कुछ सरसों मंगवा कर, फिर उस सरसों पर हाथ लगाते हुए अपने मुंह में कुछ मन्त्र बुदबुदाए और उन से कह दिया कि इस अभिमंत्रित सरसों को वे अपने सारे घर आंगन में बिखेर दें, इससे उनकी समस्या का समाधान हो जाएगा। परन्तु उनके द्वारा घर में 'अभिमंत्रित' सरसों को बिखेरने के पश्चात् समस्याओं ने और भी विकराल रूप धारण कर लिया। पहले तो घर में पति-पत्नी का झगड़ा होता था और घर में सदस्यों के कपड़े ही कटे हुए मिलते थे, परन्तु अब 'अभिमंत्रित सरसों' को घर में बिखेरने के बाद घर में रखे हुए पैसे तथा आभूषण भी गुम होना शुरू हो गये।

परेशान होकर वे इस समस्या के समाधान के लिए एक के बाद एक अनेकों ही बाबाओं, पीरों के भगतों, बाला जी की चौकियों पर भटकते रहे। समस्या का समाधान तो कहीं पर से भी नहीं हो सका, परन्तु बाला जी की चौकी पर मोनिका ने सिर घुमा कर खेलना शुरू कर दिया और उसके सिर पर 'ओपरी चीज़' ने बोलना भी शुरु कर दिया। ज्यों-ज्यों वे बाबाओं, भगतों, तान्त्रिकों, चौकियों पर जाते रहे त्यों-त्यों उनके घर में विचित्र घटनाएं और अधिक बढ़ती चली गईं। यह सिलसिला लम्बे समय तक चलता रहा।

इसी दौरान मोनिका ने अपनी उस जानकार महिला के पति के सहयोग से नजदीकी कस्बे में किराये की एक दुकान का इंतजाम कर लिया और उस में कुछ मशीनें रख कर अपनी बुटीक का कार्य शुरू कर दिया। अभी वह अपनी बुटीक में अकेले ही सभी कार्य संभाल रही थी। कस्बे में बुटीक के खुल जाने से मोनिका का काम काफी अच्छा चलने लग गया था। अब उनके घर में विचित्र घटनाएं कभी-कभार हो ही जाया करती थी। पति-पत्नी का आपस में तनाव पहले की भांति यथावत जारी था। सतपाल ड्राईवरी के लिए अपने मालिकों के साथ टूर के बहाने घर में बहुत कम ठहरता था। अब जिस दिन भी पति-पत्नी का झगड़ा हो जाता उस दिन घर में कोई न कोई घटना अवश्य घट जाती। इसी दौरान एक-दो बार कस्बे में बुटीक पर अन्य महिलाओं द्वारा सिलाई के लिए भेजे गये कुछ कपड़े भी कट गये। उन कट गये कपड़ों का हर्जाना भी मोनिका को अपनी जेब से भरना पड़ा था। जब बुटीक में से भी 'ओपरी-पराई चीजों' के द्वारा कपड़े कट जाने की बात उस इलाके में फैल गई तो कस्बे की ही एक ग्राहक महिला ने, जो कि तर्कशील सोसायटी के जनहित कार्यों से पचिचित थी, उसे मेरा फोन नंबर एवं पता दे दिया।

समस्या के कारण एवं उस का समाधान :-

मोनिका ने ग्राहक महिला से मेरा फोन नंबर प्राप्त कर लेने के पश्चात् मुझसे फोन मिलाया और अपने घर में घटित हो रही घटनाओं के बारे में बताया और इस के समाधान के लिए मुझ से अनुरोध किया। मैंने उन्हें मेरे पास रविवार को मनोरोग परामर्श केंद्र में पहुँचने के लिए कह दिया। रविवार को मोनिका अपनी उसी ग्राहक सहेली को अपने साथ लेकर परामर्श केन्द्र में पहुंच गई।

मैने मोनिका से वार्तालाप करके सारे घटनाक्रम का जायजा लिया और पाया कि उन के घर में होती रहीं सभी घटनाओं के पीछे मोनिका का ही हाथ है। तत्पश्चात् मैंने मनोवैज्ञानिक काउंसलिंग के द्वारा मोनिका के अवचेतन मन पर पड़े हुए बोझ को दूर किया। मनोवैज्ञानिक प्रभाव के अधीन मोनिका ने अपने मन की गांठों को पूर्ण रूप से खोल दिया, जिस से उनके घर की समस्याओं का समाधान करने में आसानी हो गई।

जब मोनिका का ससुर जीवित था तब तक घर का माहौल बिल्कुल ठीक ठाक चल रहा था। परन्तु उसके ससुर की मृत्यु के पश्चात् सतपाल के व्यवहार में काफी हद तक बदलाव होता चला जा रहा था। अब वह अपनी ड्यूटी की बात कह कर कई बार रात को घर से बाहर ही रह जाता था। धीरे-धीरे उस का रातों को घर से बाहर रह जाना बढ़ता चला रहा था। सतपाल ने अपनी जमीन को ठेके पर दे दिया और घर में उसके पिता ने जो एक-दो भैंसे पाली हुई थी, वे भी उसने बेच दी। अब सतपाल ज्यादातर घर से बाहर ही रहने लग गया और शराब भी पीने लग गया था।

मोनिका घर में रह कर सिलाई का कार्य तो पहले भी कर लिया करती थी, परन्तु अब पर्याप्त समय बच जाने के चलते वह सिलाई-कढ़ाई की ओर विशेष ध्यान देने लग गई। इसीलिए अब उसके मन में नजदीक के कस्बे में अपना बुटीक खोलने के विचार आना शुरू हो गये। कस्बे में किराये के लिए दुकान के बारे में पता करने के लिए उसने अपने पति को अनेकों बार अनुरोध किया परन्तु सतपाल ने मोनिका की बातों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। जब भी मोनिका किसी भी बात की सतपाल से फरमाईश करती, सतपाल उसे पूरी तरह से अनदेखा कर देता। सतपाल की लापरवाही के कारण मोनिका के अवचेतन मन पर अत्यधिक बोझ पड़ता चला गया। इसी मानसिक बोझ के कारण कई बार उन दोनों पति-पत्नी में खूब झगड़ा होना शुरू हो गया। मन पर पड़े इसी बोझ के कारण कई बार सास-बहू में भी खूब झगड़ा हो जाया करता था। इसी मानसिक बोझ के कारण ही कई बार अवचेतन तौर मोनिका के हाथों से घर वालों के कपड़े भी कट जाते थे। अवचेतन तौर पर काटे गये कपड़ों को देख कर कई बार मोनिका को चक्कर भी आने लग गये थे।

घर में ऐसी घटनाएं होती देख कर जब वे दोनों सास-बहू किसी बाबा के पास गई और बाबा ने जब इसे किसी द्वारा जादू-टोना किये होने की बात कह दी तो मोनिका के मन पर इसका विपरीत प्रभाव पड़ गया। इसी दौरान मोनिका को अपनी एक जानकार महिला के द्वारा नजदीकी कस्बे में किराये के लिए उपलब्ध दुकान के बारे पता चल गया। मोनिका ने इसके बारे में जब सतपाल से बात की और सतपाल ने इस बाबत लापरवाही दिखाई तों मोनिका ने मन ही मन किसी भी कीमत पर उस दुकान को प्राप्त करने का संकल्प लिया। बाबा द्वारा जब घर में घट रही घटनाओं को जादू-टोना व ओपरी-पराई का कारनामा घोषित कर दिया गया तो मोनिका ने उस से चेतन तौर पर फायदा उठाना शुरू कर दिया। वह जानबूझ कर कभी अपने वाले, तो कभी अपनी सास वाले आभूषण उठा कर किसी सुरक्षित जगह पर रख लेती। बीच-बीच में वह घर के किसी सदस्य का कोई न कोई कपड़ा भी काट देती रही। इस प्रकार से उसने अपने घर से लगभग सभी आभूषणों पर हाथ साफ कर दिया। फिर समय मिलने पर शहर में जा कर किसी सुनार की दुकान पर वे सभी आभूषण बेच दिये। सारे आभूषण बेच कर उसके पास लगभग चार लाख आ गये तथा शेष एक लाख रुपये वह अपने मायके से उधार के तौर पर पकड़ कर ले गई। इस प्रकार उसने दुकान के लिए पगड़ी का इन्तजाम कर लिया और कस्बे में अपनी बुटीक खोल ली। बुटीक में उस का काम काफी अच्छी प्रकार से चलना शुरू हो गया, परन्तु उनका पति-पत्नी का आपस में झगड़ा चलता ही रहता था।

इसी दौरान उसे किसी विश्वस्त सूत्रों के हवाले से पता चल गया कि पिछले काफी समय से सतपाल का किसी विधवा महिला के साथ अवैध संबन्ध है। इसी कारण सतपाल अपनी ड्यूटी का बहाना बना कर रातों को उस विधवा महिला के पास ठहर जाता है। सतपाल द्वारा अपनी ड्यूटी के नाम पर रातों को बाहर रहने तथा मोनिका के साथ नाम-मात्र के संबंध रखने पर मोनिका को उस पर संदेह तो पहले ही था। अब विश्वस्त सूत्रों से जानकारी मिलने पर वह पूरी तरह से जल भुन गई। एक दिन जब रात को सतपाल अपनी ड्यूटी से घर वापिस आया तो मोनिका ने रात को सतपाल से इस बारे में पूछताछ करनी शुरू कर दी। अपनी पोल खुलती देख सतपाल ने उल्टा मोनिका पर ही इल्ज़ाम लगाना शुरु कर दिया। उस रात पर उन दोनों का आपस में बहुत अधिक झगड़ा होता रहा। दिन में सतपाल तो अपनी ड्यूटी पर चला गया परन्तु मोनिका अपनी बुटीक पर कई दिन तक अत्यधिक क्रोधित एवं बेचैन रही। इसी बेचैनी की अवस्था में मोनिका नें ग्राहकों द्वारा सिलाई के लिए दिए हुए कुछ कपड़े भी अवचेतन अवस्था में काट दिये थे, जिनका हर्जाना भी उसे ही अपनी जेब से भरना पड़ा था।

मनोवैज्ञानिक काऊंसलिंग के दौरान मोनिका ने स्पष्ट रूप से सभी क्रियाकलापों का करना मान लिया था तथा अब उसे इस पर पछतावा भी हो रहा था। परन्तु उसके पति सतपाल को सीधे रास्ते पर लाना अभी शेष था। अत: मैने मोनिका से आगामी रविवार को उसके पति सतपाल को साथ में लाने का निर्देश दे दिया, ताकि उससे मिल कर उसे भी मनोवैज्ञानिक तौर पर समझाया जा सके। अगले रविवार वे दोनों पति-पत्नी परामर्श केन्द्र में आ गये। मोनिका बेहद प्रसन्न दिखाई दे रही थी। उसने बताया कि उसके बाद घर में अथवा दुकान में कोई भी अनहोनी घटना नहीं घटित हुई तथा उसका क्रोध भी अब शान्त रहता है। इसी शान्त स्वभाव से उस के द्वारा

शेष पृष्ठ 16 पर

भविष्यवाणी

सीता राम गुप्ता
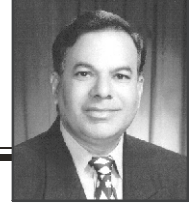
प्रायः अधिकांश व्यक्ति अपने भविष्य के विषय में जानने को बहुत अधिक उत्सुक रहते हैं। भविष्य के विषय में जानने की अनेक पद्धतियाँ भी हमने विकसित कर रखी हैं। लेकिन क्या वास्तव में भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं के विषय में सही-सही बतलाया जा सकता है ? नहीं। यदि भविष्य के विषय में जानना संभव होता तो हम आने वाली बीमारियों के बारे में जानकर उनके आने से पहले ही उनका उपचार खोज लेते अथवा कर लेते। इससे हम न केवल अनेक दुर्घटनाओं से बच जाने अपितु अपराधों को रोकने में भी सफल हो जाते। साथ ही अपराधियों के विषय में जानकारी प्राप्त करके उन्हें उचित दंड देना भी संभव हो पाता। यदि हम विवेकपूर्वक विचार करें तो यही पाते हैं कि भविष्य में क्या होगा ये बतलाने की कोई विज्ञानसम्मत सटीक पद्धति अथवा विधि है ही नहीं। और यदि ये संभव है तो भी इससे लाभ नहीं हानियाँ ही होने की संभावना बढ़ जाती है।

भ्रामक ही नहीं घातक भी हो सकती है किसी भी प्रकार की भविष्यवाणी

किसी के बतलाए अनुसार घटित हो जाना एक संयोग मात्र है। इस संदर्भ में एक कहानी याद आ रही है। एक चरवाहा था। वह समझदार भी बहुत था। वर्तमान घटनाक्रम को ठीक से समझकर उसके परिणाम के बारे में पहले ही बता देता था। लोग उससे इतने अधिक प्रभावित थे कि वे उसे पक्का भविष्यवक्ता मानने लगे। उसके भविष्यज्ञान की चर्चा दूर-दूर तक फैल गई। बात राजा के कानों तक पहुँचने में भी देर नहीं लगी। राजा ने अपनी मुट्ठी में एक टिड्डा बंद कर लिया और चरवाहे से पूछा कि बता मेरी मुट्ठी में क्या है। ठीक-ठीक जवाब देगा तो इनाम पाएगा वरना मौत के घाट उतार दिया जाएगा। चरवाहा बेचारा कैसे बताए कि राजा की मुट्ठी में क्या है? किसी चीज़ को बिना देखे हम कैसे बता सकते हैं कि वो क्या है ? चरवाहा डर के मारे थर-थर काँपने लगा।

संयोग से चरवाहे का नाम भी टिड्डा था। उसने घटनाक्रम को ठीक से समझकर अनुमान लगाया कि अब जान बचनी मुश्किल है और राजा से कहा, ''राजा तेरी मुट्ठी में बस टिड्डे की नन्हीं सी जान है और कुछ नहीं।'' चरवाहे ने तो बस इतना ही कहा था कि राजा की मुट्ठी में टिड्डे नामक उस चरवाहे की नन्हीं सी जान है लेकिन राजा ने समझा कि चरवाहे ने सही भविष्यवाणी की है और उसने उस चरवाहे को अपने राज्य का प्रमुख ज्योतिषी नियुक्त कर दिया। कई बार ऐसे संयोग सही होने के कारण ही लोग इन तथाकथित भविष्यवक्ताओं पर विश्वास करने लगते हैं और उनके चंगुल में फँस जाते हैं। एक उदाहरण से इस तथ्य को समझने का प्रयास करते हैं। कुछ लोग बच्चा पैदा होने से पहले ये बतलाने का कार्य करते हैं कि लड़का होगा या लड़की। साथ ही वे लड़का होने का उपाय भी बतलाते हैं। वैसे ये दोनों ही बातें कानून की दृष्टि से अपराध भी हैं।

इस तरह भविष्य बतलाना गैरकानूनी भी है और ये सब करना और करवाना दंडनीय अपराध की श्रेणी में आते हैं लेकिन लोग कब मानते हैं ? अब यदि वे सबके लड़का होने की भविष्यवाणी कर देते हैं तो भी उनकी लगभग पचास प्रतिशत भविष्यवाणी तो ठीक ही बैठेगी क्योंकि ये स्वाभाविक है। अब जिन परिवारों में लड़का पैदा होगा वे उस भविष्यवक्ता पर अनायास ही विश्वास करने लगेंगे। लेकिन इस प्रकार की घटनाओं अथवा संयोगों पर विश्वास करना अंधविश्वास के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं। ये बिलकुल वैसा ही है जैसे परीक्षा में बहुविकल्पात्मक प्रश्नों के उत्तर देने के लिए केवल पहले, दूसरे, तीसरे अथवा चौथे विकल्प पर निशान लगा देना। इस प्रकार के प्रयास में बिना जानकारी के अथवा बुद्धि का प्रयोग किए बिना

भी काफी उत्तर ठीक हो जाते हैं और कई बार बहुत अच्छे अंक भी मिल जाते हैं। लेकिन क्या इसे सही ठहराया जा सकता है ?

विवाह से पूर्व कुछ लोग लड़के और लड़की की जन्म कुंडलियों को मिलवा कर देखते हैं और अपेक्षित संख्या में दोनों के गुण मिल जाने पर ही विवाह के लिए तैयार होते हैं। लेकिन वास्तविकता ये है कि कई बार लड़के और लड़की के पर्याप्त गुण मिल जाने के उपरांत भी विवाह सफल नहीं हो पाते। अब इससे क्या सिद्ध होता है ? यही न कि कुंडली-मिलान का कोई औचित्य नहीं। एक सज्जन का तो यहाँ तक कहना है कि यदि जन्म कुंडलियों का मिलान करने के बाद विवाह सफल नहीं होता है तो जन्म कुंडलियों का मिलान करने वाले व्यक्ति को दोषी मानकर उसे दंड दिया जाना चाहिए। बात बिलकुल पते की है लेकिन इस पद्धति की कमियाँ छिपाने के लिए कोई न कोई दूसरा बहाना ढूँढ लिया जाता है। गलत बात को सही और सही बात को गलत सिद्ध करने के लिए हमारे पास कुतर्कों की कमी नहीं होती।

वास्तविकता ये है कि कई बार जन्म कुंडलियों का सही मिलान करने के चक्कर में लोग अच्छे रिश्तों को नज़रअंदाज़ कर देते हैं और गलत जगह फँस जाते हैं, कई बार जिसके बड़े भयंकर परिणाम होते हैं। भविष्य बतलाना केवल लोगों को बरगलाना व बेवकूफ बनाने का उपक्रम है और इसके परिणाम भी बहुत नुकसानदायक होते हैं। कोई विद्यार्थी पास होगा या फेल होगा ये कैसे बतलाया जा सकता है ? यदि वह परिश्रम करेगा तो अवश्य पास होगा और यदि परिश्रम नहीं करेगा तो उसके पास होने की संभावना भी कम हो जाएगी। लेकिन यदि कोई भविष्यवक्ता इस प्रकार की पास या फेल होने की भविष्यवाणी करता है तो इसके दुष्परिणाम भी कम नहीं होते। यदि किसी अच्छे विद्यार्थी के विषय में भविष्यवाणी कर दी जाए कि वो पास होगा या प्रथम स्थान प्राप्त करेगा तो संभव है कि इस भविष्यवाणी के पश्चात् वो विद्यार्थी परिश्रम करना ही छोड़ दे अथवा कम परिश्रम करे और पास होने पर भी अच्छे अंक प्राप्त न कर सके।

इसके विपरीत परिस्थितियों में भी कुछ ऐसा ही होने की संभावना बढ़ जाएगी इसमें संदेह नहीं। यदि किसी कमज़ोर विद्यार्थी के विषय में भविष्यवाणी कर दी जाए कि वो पास नहीं होगा तो इससे वो पूरी तरह से निराश हो जाएगा और वो पहले जितना परिश्रम करता था उतना परिश्रम करना भी छोड़ देगा और सचमुच फेल हो जाएगा जबकि वास्तविकता ये है कि परिश्रम करने के लिए प्रोत्साहित करके ऐसे विद्यार्थियों को भी सफलता के मार्ग पर अग्रसर किया जा सकता है। कई व्यक्ति इन भविष्यवक्ताओं के चक्कर में पड़कर सही निर्णय लेने की क्षमता ही खो बैठते हैं। कई लोग इन तथाकथित भविष्यवक्ताओं से पूछे बिना कोई काम नहीं करते और उनके चक्कर में पड़कर काम करना ही छोड़ देते हैं और इस तरह से कई बार अच्छे अवसर भी उनके हाथ से निकल जाते हैं। इस प्रकार से स्पष्ट हो जाता है कि भविष्य के विषय में बतलाना न केवल एक कपोलकल्पित विद्या है अपितु इसका दुष्प्रभाव भी कम नहीं पड़ता।

यदि हमें पता चल जाए कि अमुक दिन परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाएगी तो उससे क्या होगा ? वैसे तो ये बतलाना संभव ही नहीं लेकिन यदि पता लग भी जाए तो हम उसकी मृत्यु से पहले ही बहुत दुखी हो जाएंगे। यदि हमें अपनी मृत्यु के समय के विषय में सही-सही ज्ञात हो जाए तो हम उसी क्षण से जीवन के प्रति उदासीन हो जाएँगे जो किसी भी तरह से उचित नहीं कहा जा सकता, इसलिए हमें इस प्रकार की निरर्थक बातों अथवा अज्ञात भविष्य को जानने की आवश्यकता बिलकुल भी नहीं होती। हमें भविष्य के लिए सही योजना तो बनानी चाहिए लेकिन अनिश्चित भविष्य की चिंता बिलकुल नहीं करनी चाहिए। यदि हमने अपना वर्तमान संवार लिया तो हमारा भविष्य तो अपने आप ही सँवर जाएगा। कुछ चालाक किस्म के लोग दूसरे लोगों को बेवकूफ बनाकर पैसे ऐंठने के लिए इस प्रकार की विद्या का प्रचार-प्रसार करने में लगे रहते हैं। हमें हर हाल में सकारात्मक वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास कर अंधविश्वास और पाखण्ड से दूर रहना चाहिए अन्यथा हमारा पढ़ाई लिखाई करना ही बेकार है।

9555622323

कमरअली दरवेश की पुकार !

डॉ. नरेंद्र दाभोलकर

महाराष्ट्र के पूना से तीस किलोमीटर दूर पूना-सतारा रोड पर खेड शिवापुर नाम का एक गाँव है। उसके नजदीक ही मुड़कर अंदर आने पर 'कमरअली बाबा' का दरगाह नजर आता है। यह सभी धर्म के लोगों के मेल-मिलाप का स्थल है। नाम है-'कमरअली दरवेश का दरगाह'। कभी समाचार-पत्रों में, कभी फिल्म डिवीजन के 'वृत्तचित्रों' से तो कभी दूरदर्शन की जगमगाहट से वह हमेशा सुर्खियों में रहता है।

दरगाह के सामने दो बड़े पत्थर हैं। बताया जाता है कि उसमें से एक नब्बे किलोग्राम का है, तो दूसरा साठ किलोग्राम का। पहले पत्थर को ग्यारह और दूसरे पत्थर को नौ लोग सिर्फ उँगली की मात्र नोंक लगाए और 'कमरअली दरवेश की जय' का नारा लगाए तो, ये पत्थर पंख जितने हल्के बन जाते हैं और उँगली लगाने वालों के सिर तक इन्हें आसानी से उठाया जाता है और वह भी केवल हर एक की एक-एक उँगली के सहारे। पहले पत्थर के लिए ग्यारह और दूसरे पत्थर के लिए नौ ही लोग होने चाहिएं। इसमें कोई कमीबेशी मान्य नहीं है। पत्थर उठाते समय कमरअली दरवेश का ही जयघोष होना चाहिए, यह भी जरूरी शर्त है। महिला द्वारा उँगली लगाना मना है। अनजाने में भी कोई महिला उँगली लगा दे तो बात बिगड़ जाती है।

'कमरअली दरवेश' एक साक्षात्कारी फकीर थे। वे इस जगह पर कब और कैसे आए, इसका किसी को पता नहीं है। लेकिन उन्होंने किसी समय इस जगह के सारे भूत-प्रेत और पिशाच भगा दिए थे। सत्तर वर्ष की उम्र में उन्होंने समाधि ली। इस जगह पर दो राक्षस थे। फकीर ने उन्हें शाप दिया कि 'तुम पत्थर बनकर गिरोगे और लोग तुम्हें उठाकर पटक देंगे।'

फकीर के श्राप से राक्षस से पत्थर बनने की कहानी सुनकर भी कौतूहल न होता तो आश्चर्य होता। मुम्बई दूरदर्शन ने जून, 1987 में यह चमत्कार बिना किसी स्पष्टीकरण के दिखाया था। इसके बाद पत्थरों को शाप-मुक्त करने की जिम्मेदारी हमारे ऊपर आ गई। दरअसल इस संबंध में कई पत्रों में प्रकाशन और प्रतिक्रियाएँ शुरू हो चुकी थीं। चमत्कार न होने की बात हम करते आये थे, इसलिए हमारे लिए इस मसले का भंडाफोड़ करने की चुनौती थी।

मैं, प्रा. आर्डे, मंडपे, शिंदे, पांगे, दयाल, बाबर- कुल सात कार्यकर्त्ताओं ने यह चुनौती कबूल की। भिखारी, फूल-माला बेचने वाले तथा भक्तगणों के बीच से रास्ता निकालते हुए दस-बारह पत्थरों की सीढ़ियाँ चढ़कर दरगाह के फाटक से दरगाह के सामने आए। प्रवेशद्वार के दोनों ओर दो पत्थर थे। एक पत्थर कुरंड का (बालुकाशम) और दूसरा काला (कणाश्म) का था। दोनों पत्थर गढ़ाए गए थे जिनका आकार बड़े प्रेशर कुकर जितना था। पत्थर का व्यास लगभग एक फुट, लम्बाई भी एक फुट थी। पत्थर मुख्य दरगाह के बाहर था। प्रवेशद्वार पर बोर्ड लगा था: 'स्त्रियों को अंदर आना मना है'।

पत्थर के पास एक बौना युवक सिर पर लाल रुमाल बाँधकर खड़ा था। मैने उससे पूछा, ''इस पत्थर को कैसे उठाते हैं ?''

''ग्यारह लोग पत्थर के नीचे तर्जनी लगाएँगे। एक सुर में जोर से जयघोष करेंगे 'कमरअली दरवेश की जय'। पत्थर कागद जैसा हल्का बनता है और उठाया जाता है।''

सामने वाले चबूतरे पर सिर पर लाल रुमाल बाँधे कुछ सामान्य लोग तथा मुल्ला-मौलवी थे। उनमें से तीन-चार लोग आगे आए। पूछने लगे कि 'देखना है ?' हमारे द्वारा सिर हिलाते ही बोले, 'आओ भाई।' हम सात लोग थे और वे चार। उनके कहने के अनुसार दाएं हाथ की तर्जनी पत्थर को लगाई। भरोसा करने के हेतु उन्होंने फिर एक बार उँगलियाँ गिनाईं। ग्यारह ही थीं। फिर एक ही दम में आवाज दी-'कमरअली दरवेश की जय'! पत्थर जैसे-तैसे आधा फुट ऊपर गया और एक ओर लुढ़क गया। फिर एक बार जोर से इन्हीं लोगों ने यही प्रयोग किया, लेकिन पत्थर आधे फुट से ऊपर नहीं जा सका। मँजे हुए भक्तगण सकते में आ गए और अचानक उन्हें एक तरकीब सूझी। 'अरे बाप रे! ये सारे अतिथि तो पैरों
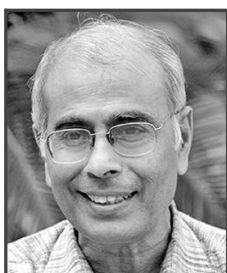
में चप्पल पहने हुए ही पत्थर को छू रहे हैं!' फिर हमें 'जूते-चप्पल निकालने' का हुक्म दिया गया। हमने चप्पल-बूट निकाले फिर एक बार सभी ने तर्जनी लगाकर कमरअली का जयघोष किया, लेकिन परिणाम पहले जैसा ही निकला। थोड़े मायूस होकर सिर पर रुमाल बाँधे लोग दूसरी तरफ चले गए। अपने औलिया फकीर की ताकत आज काम क्यों नहीं कर रही है, इस बात की पहेली में वे उलझे रहे।

असल में इसमें पहेली जैसा कुछ था ही नहीं, क्योंकि केवल उँगली लगानी है, ताकत नहीं, ऐसा निर्णय करने के कारण बेचारा कमरअली क्या करता ?

हम आगे बढ़े। दरगाह पर आए। हम जैसे चार मेहमानों को बुलाकर उँगली लगाने को कहा गया। जयघोष किया गया। देखते-देखते पत्थर कंधे जितना ऊपर उठ गया। उसे नीचे रेती में फेंक दिया गया। रुमाल वाले लोगों के चेहरे पर खुशी छा गई। अब धीरे-धीरे भीड़ हमारे आस-पास इकट्ठी हो रही थी। कमरअली दरवेश का नाम न लेकर पत्थर उठाने की बात हमने जाहिर की।

हमारी बात सुनकर एक ने हमें फटकारा, ''परसों कोल्हापुर के पहलवान लोग आए थे। उन्होंने भी इसी प्रकार का प्रयास किया मगर सफल नहीं हुए। आसान काम नहीं है यह।''

''देखेंगे, प्रयास करने में क्या हर्ज है?'' हमारे कार्यकर्ता मंडपे जी ने कहा।

फिर एक बार हम सभी ने पत्थर के नीचे उँगलियाँ डालकर 'महात्मा फुले की जय' का घोष किया और पत्थर को कंधे तक उठाकर धम से नीचे फेंक दिया।

भीड़ में कुलबुलाहट शुरू हुई। हमने फिर एक नई तरकीब निकाली। ग्यारह लोग ही क्यों ? एक बार दस और एक बार बारह लोगों को उँगलियाँ लगाने को कहा गया और पत्थर करीबन सिर तक ऊपर उठ गया। नज़दीक वाले पत्थर पर भी नौ के बदले आठ और दस लोगों को बुलाकर इसी प्रकार के प्रयोग किए गए।

अब तक माहौल काफी गरम हो चुका था। दरगाह पर आई दो महिलाएँ बड़ी जिज्ञासा से बहुत समय से यह सब देख रही थीं। उन्होंने जिज्ञासावश हमसे पूछा, ''क्या हम उँगली लगा सकती हैं ?''

सच तो यह है कि महिलाएँ उस पत्थर को स्पर्श न करें, यह उस स्थान का 'पवित्र' संकेत था। धार्मिक स्थलों पर ऐसे नियमों का पालन भक्त आँख मूँद कर करते हैं और उनका आग्रह भी रहता है कि दूसरे भी ऐसा ही करें। इन नियमों का जाहिर उल्लंघन करना खतरे से खाली नहीं रहता। इसके गंभीर परिणामों की भी संभावना रहती है। लेकिन अब ऐसा समय आ चुका था कि हम पीछे हटने वाले नहीं थे। परिस्थिति और अपने आत्मविश्वास के बल पर हमने उनसे कहा, ''क्यों नहीं! बेशक।''

दो महिलाएँ, अन्य चार लोग और हमारे चार कार्यकर्त्ताओं ने पत्थर के नीचे तर्जनियाँ लगाकर सीधे 'बोलो-एक, दो, तीन' की आवाज लगाई। देखते-देखते पत्थर ऊपर उठ गया। उन दोनों का इतराया हुआ चेहरा देखने लायक था। अब ध्यान में आया कि पत्थर उठाने के पीछे के कार्य-कारण भाव समझने पर चमत्कार लुप्त हो जाता है। वहाँ से बाहर निकलने के हेतु हमने पैरों में चप्पल और बूट डाले और हमारे ध्यान में आया कि एक बात तो रह ही गई है। फिर हमने चप्पल पैर में डालकर ही दोनों पत्थरों से उँगलियां लगाईं, उन्हें ऊपर उठाया और धप् से नीचे छोड़ दिया।

पत्थर के नीचे उँगली लगाकर बल लगाया जाता है। सभी दिशाओं से बल लगने के कारण पत्थर हिलता नहीं और उस पर मजबूत पकड़ बैठती रहती है। एक ही सुर में चिल्लाने से एक ही समय बल लगाने की सूचना सभी को मिलती है। बड़ी-बड़ी वस्तुएँ, पेड़ के तने जगह से हिलाते समय और इमारतों पर टंकियाँ चढ़ाते हुए मजदूर लोग 'जोर लगाके हैया' कहते हुए हम देखते ही हैं। सभी ओर से लगाए बल के परिणामस्वरूप पत्थर उठाया जाता है। जमीन से उठाते समय उँगली को ज्यादा बल लगाना पड़ता है। एक बार पत्थर ऊपर उठाने पर सारा बल कलाई और उसके पीछे की कोहनी के स्नायु पर आता है, जिससे पत्थर को ऊपर उठाने में आसानी हो जाती है।

फकीर द्वारा पत्थर बनाए गए राक्षसों का क्या हुआ, पता नहीं, लेकिन अंधविश्वास की लाट बने उन पत्थरों को फेंकते समय लग रहा था कि बहुसंख्यकों के सिर पर बैठे अंधविश्वास के 'राक्षस' को हम ऐसे कब फेंक सकेंगे?

(स्रोत:पुस्तक 'अंधविश्वासः उन्मूलन-आचार' (दूसरा भाग)

संपादक : डा. सुनील कुमार लवटे
अनुवादक : प्रकाश कांबले)

वह शख्स जो अनंत को जानता था

श्रीनिवास रामानुजन

- सुभाष गाताडे

महान गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन को अब इस देश में याद भी नहीं किया जाता। उनका जन्मदिन और उनकी पुण्यतिथि आती है और गुज़र जाती है।

एक नायाब हीरा! गणित में रामानुजन का कद वही है जो संगीत में मोजार्ट का और भौतिकी में आइंस्टीन का। –क्लिफोर्ड स्टोल, ''द कक्कूस'' के लेखक।

यह किस्सा कई किताबों में बयां किया जा चुका है जिसमें बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ब्रिटेन में गणित अध्ययन को अपने सहयोगी प्रोफेसर लिटिलवुड के साथ नई दिशा देने वाले और अपने आप में एक महान गणितज्ञ प्रोफेसर हार्डी और महान गणितज्ञ और दार्शनिक बर्ट्रेंड रसल की बातचीत का जिक्र है। प्रोफैसर हार्डी ने रसल को बहुत उत्साहित होकर बताया था कि 'उन्हें दूसरा न्यूटन मिल गया है'।

इन पंक्तियों को पढ़ने वाले पाठक इस बात से खुश हो सकते हैं कि प्रोफैसर हार्डी अपने प्रचंड मेधावी छात्र और सहयोगी श्रीनिवास रामानुजन को दूसरा न्यूटन कह कर संबोधित कर रहे थे। यह अलग बात है कि महज 32 साल की उम्र में ही श्रीनिवास रामानुजन अप्रैल 1920 को दुनिया को अलविदा कह गए।

श्रीनिवास रामानुजन ने अपने छोटे से जीवन में गणितीय विश्लेषण, नंबर थ्योरी, इनफाइनाइट सीरिज आदि विभिन्न क्षेत्रों में अहम योगदान दिया। उनके जीवनीकार बताते हैं कि उनकी नोटबुक्स पर उनकी मौत के बाद भी निरंतर काम होता रहा और इनमें से गणितीय विचार हासिल किए जाते रहे। इन नोटबुक्स में रामानुजन के प्रकाशित और अप्रकाशित निष्कर्ष शामिल है।

विडंबना ही है कि भारत के ज्ञात इतिहास के महानतम गणितज्ञों में शुमार श्रीनिवास रामानुजन की सौवीं पुण्यतिथि पर न तो सरकारें उन्हें ढंग से याद करने की तकलीफ उठाती हैं और न ही नागरिक समाज। ना ही समझने की जहमत उठाई कि भारत में रहते हुए कॉलेज की तालीम हासिल करने से भी महरूम रह गया। यह शख्स आखिर महज 32 साल की उम्र में इतनी बुलंदियों पर कैसे पहुंच गया कि आज भी उनके नोटबुक्स में लिखे प्रमेयों पर काम कर लोग शोहरत हासिल कर रहे हैं और उनके प्रमेय पॉलीमार केमेस्ट्री, कंप्यूटर, कैंसर और यहां तक कि भौतिकी की अग्रगामी शाखा स्टिंग थ्योरी में भी इस्तेमाल हो रहे हैं।

तामिलनाडु के इरोड जिले में बेहद पारंपरिक परिवार में जन्में रामानुजन बचपन से ही अभावों में पले थे और कुछ मामलों में बेहद रूढ़िवादी भी थे। उनकी कहानी उस प्रोफैसर हार्डी के बिना अधूरी रह जाती है जिन्होंने विलक्षण प्रतिभा को पहचाना और उन्हें कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में अध्ययन और अनुसंधान के लिए बुलाया। वहां जाने पर प्रोफैसर हार्डी ने उनकी प्रतिभा को निखारा और इस दौरान दोनों ने मिलकर भी गणित के क्षेत्र में अद्‌भुत काम किया। उच्च श्रेणी के उनके अनुसंधान के लिए उन्हें वहां 'फेलो ऑफ द रॉयल सोसाइटी' चुना गया। यह सम्मान पाने वाले वे दूसरे भारतीय थे, इसके पहले वह सम्मान 1841 में अरदेसियर करसेटजी को दिया गया था। रामानुजन पहले भारतीय थे जिन्हें 'फेलो ऑफ ट्रिनिटी कॉलेज' चुना गया था। यह बेहद दुखद था कि स्वास्थ्य की समस्या ताउम्र उनका पीछा करती रही और उनका इंतकाल महज 32 साल की उम्र में हो गया।

श्रीनिवास रामानुजन का 16 मार्च 1913 का वह खत अब इतिहास बन चुका है जो उन्होंने प्रोफैसर हार्डी को लिखा था। उन दिनों रामानुजन मद्रास पोर्ट ट्रस्ट के दफ्तर के लेखा विभाग में कर्मचारी के तौर पर काम कर रहे

थे। रामानुजन ने इस खत में बताया था कि उन्होंने विश्वविद्यालय की तालीम हासिल नहीं की है। महज स्कूली शिक्षा हासिल की है। स्कूल छूटने के बाद से छिटपुट काम करते रहे हैं और बचा समय गणित में लगाते रहे। उन्होंने लिखा था कि ''वे गणित के क्षेत्र में अपने लिए नया रास्ता ढूंढ रहे हैं।''

आमतौर पर होता यही कि कॉलेज की सीढ़ियां तक नहीं चढ़ सके और फिर भी बड़े-बड़े दावे कर रहे इस शख्स के पत्र का हश्र कूड़ेदान में होता जैसा कि प्रोफैसर हार्डी के दो अन्य सहयोगियों ने किया था। लेकिन प्रोफैसर हार्डी अलग किस्म के थे। उन्होंने इन कागजों मे लिखे प्रमेयों को पढ़ते हुए तुरंत समझ लिया कि इन्हें 'किसी अत्यधिक प्रतिभाशाली गणितज्ञ ने भेजा है', 'किसी ऐसे शख्स ने जिसमें असाधारण मौलिकता और शक्ति है'। उन्होंने बेहद संकोची स्वभाव के रामानुजन को इस बात के लिए प्रेरित किया कि आगे की पढ़ाई के लिए वे कैम्ब्रिज आएं। उनके द्वारा काफी समझाने बुझाने और प्रोत्साहित करने के बाद ही रामानुजन वहां पहुंचे। वहां रहकर और गणितज्ञों के साथ मिलकर लगभग पांच साल तक काम किया। वह किस्सा बहुत मशहूर है जब बीमार रामानुजन को देखने प्रोफैसर हार्डी पहुंचे थे और उन्हें बताया था कि जिस टैक्सी में वह पहुंचे हैं उसका नंबर 1729 था। रामानुजन तुरंत बोल उठे थे यह तो अद्‌भुत नंबर है। यह सबसे छोटी संख्या हैं जिसे दो अलग-अलग संख्याओं के घन जोड़ के तौर पर दो अलग अलग तरीकों से व्यक्त किया जा सकता है। प्रोफैसर हार्डी के सहयोगी प्रोफैसर लिटिलवुड ने अजनबी वातावरण में रामानुजन को लगातार समर्थन दिया था और उनकी अद्‌भुत प्रतिभा के कायल थे। वे कहते थे कि 'हर पूर्णांक रामानुजन का दोस्त है'। रामानुजन की उपलब्धियों का जिक्र करते हुए इस बात को भूल नहीं सकते कि यह वह दौर था जब भारत अंग्रेजों का गुलाम था और बेहद पिछड़ा मुल्क था। अकाल और महामारियों से लाखों लाख लोगों का मरना आम बात थी। उन्हीं दिनों हिंदुस्तान ने भौतिकी की दुनिया में भी अद्‌भुत प्रतिभाओं को उभरते देखा। वे ऐसी शख्सियतें थी जिन्होंने अपने सिद्धान्तों से भौतिकी जगत को क्रांतिकारी मोड़ दिया। इस कड़ी में हम याद करते हैं- सी.वी. रमन (1888-1970) को जिन्होंने रोशनी और रंग को देखने के हमारे नजरिए को नए सिरे से परिभाषित किया। इसके लिए उन्हें नोबेल पुरस्कार से नवाजा गया था। या फिर मेघनाद साहा (1893-1956), और सत्येन बोस (1894-1974) को। निश्चित ही यह सूची अधूरी है। ज्ञान के क्षेत्र में उस दौर में कई अन्य लोग भी दुनिया में अपना लोहा मनवा रहे थे। रामानुजन की पहली पीढ़ी के जगदीश चंद्र बोस (1858-1937), प्रफुल्ल चंद्र रे (1861-1944), पी.सी. महालनोबिस (1893-1972), नोबेल पुरस्कार से सम्मानित सी चंद्रशेख (1910-1995) थे। हमारे लिए यह पहेली ही है कि किस तरह पिछड़े उपनिवेशित भारत ने ऐसी प्रतिभाओं को जन्म दिया जिन्हें आज भी उनके योगदान के लिए याद किया जाता है और क्यों आज हम पिछड़ते जा रहे हैं। जबकि दुनिया मे तीसरी वैज्ञानिक और उद्योगिक मानवशक्ति होने का दावा करते रहते हैं। **97118-94180**

पृष्ठ 3 का शेष

कभी-कभी तो इलाज के ये तरीके रोग से अधिक घातक सिद्ध होते हैं। कुछ दिन पहले मैं एक रोगी युवक को देखने गया था। उस को टेटनस की बीमारी थी। यह बीमारी खतरनाक होती है और इसके कीटाणु धूल या गोबर में होते हैं तो त्वचा के कटने या किसी गंदी चीज के चुभने पर शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। पहले उस युवक को कभी-कभी मिरगी के दौरे आ जाते थे, जिस को ठीक करने के लिए एक झाड़ने वाले ने उस का कान कुछ दिन पहले छेदा था। जाहिर था कि उस युवक के इस खतरनाक रोग का कारण उस झाड़ने वाले की गंदी सूई ही थी। मिरगी का रोग तो उस के इस उपचार से ठीक न हुआ लेकिन युवक की जान के लाले अवश्य पड़ गए। अस्पताल में काफी दिनों तक उस युवक का इलाज हुआ तब कहीं जा कर बड़ी कठिनाई से उस की जान बच सकी। इस प्रकार की घटनाएं आए दिन देखने को मिलती हैं। आप दूसरे लोगों के बड़े बूढ़ों के कहने को बिना तर्क से सही मान लेते हैं। अच्छा हो, आप अपने दृष्टिकोण को बदलें और केवल वही काम करें जो आप को अपने तर्क से ठीक जान पड़े। ध्यान रखें, झाड़फूंक से रोग में कोई लाभ तो नहीं हो सकता है पर हानि अवश्य हो सकती है।

स्त्रोतः पुस्तक 'तंत्र मंत्र यंत्र' (संपादकः राकेश नाथ)

4. कमीज किसने सिली?

रंगनायकम्मा

कपड़ा पार्वती ने काटा या कैंची ने ?

कमीज पार्वती ने सिली या सुई ने ?

इस पर आप कुछ सोच पाये हैं ?

क्या आप यह सोच रहे हैं कि ''ये भी कोई सवाल हैं ? इतने आसान सवाल ?''

हाँ, ये सवाल सचमुच बड़े आसान हैं। मगर बड़े-बुजुर्ग भी इनके जवाब नहीं जानते। बड़े से बड़े बुद्धिजीवी भी नहीं जानते। पुराने जमाने में तो इन सवालों का जवाब किसी को मालूम नहीं था। आज सब न सही, कुछ लोग तो जरूर जानते हैं।

कपड़ा काटने का काम कैंची ने नहीं, पार्वती ने किया है। इसी तरह कमीज सिलने का काम सुई ने नहीं, पार्वती ने किया है। पार्वती ने कैंची और सुई का प्रयोग अपने काम के औजार के रूप में किया है। लेकिन जिसने ये सारे काम किये वह पार्वती ही हैं।

फिर भी कुछ नासमझ लोग कह सकते हैं कि ''औजार भी तो काम करते हैं। जो भी काम हो, इन्सान के साथ औजार भी करते हैं।'' कमीज बनाने के काम को उनके अनुसार कैसे समझा जाये ? वे इसे इस तरह समझना चाहते हैं : ''कपड़ा काटने का काम पार्वती और कैंची ने मिलकर किया है। कमीज पार्वती और सुई ने मिलकर सिली है।'' पर इसे इस तरह समझना बिल्कुल गलत होगा।

जब भी कोई काम किया जाता हो, काम इनसान ही करते हैं। कोई काम करने के लिए काम करने वालों के हाथ में औजार जरूरी होते हैं और उपयोगी भी। मगर इसका यह अर्थ नहीं कि औजार भी इनसान की तरह काम करते हों। अगर हम कैंची नीचे रख दें और उससे दूर जा बैठें, तो क्या कैंची खुद खड़ी होकर कपड़ा काट देगी ? कैंची तब तक नहीं चलती जब तक उसे कोई हाथ में न पकड़े। वह तभी चलती है जब कोई इनसान उसे चलाये। मतलब यह कि काम इनसान करता है, न कि कैंची।

लेकिन यहाँ पेश है, एक सवाल : पार्वती क्या कैंची के बगैर कपड़ा काट पातीं ? सिर्फ अपने हाथों से ही ? नहीं। हम कह चुके हैं कि किसी काम को करने के लिए औजार भी जरूरी होते हैं।

किसी भी काम को करने के लिए कोई व्यक्ति होना चाहिए जो उस काम को करे और वे औजार भी होने चाहिएं जो उस काम को करने के लिए जरूरी हों। जरूरत दोनों की होती है। लेकिन महज इसलिए कि दोनों की जरूरत होती हो, हमें यह नहीं समझना चाहिए कि काम दोनों करते हैं। काम सिर्फ इनसान ही करते हैं। औजार काम नहीं करते।

यह बात काटने के काम पर ही नहीं, सीने के काम पर भी लागू होती है। कमीज सिलने वाली है पार्वती, न कि सुई। सुई को अगर कहीं पर रख दें, तो क्या वह अपने आप ही उठ खड़ी होगी, धागा पिरो लेगी और कमीज सी देगी ? ऐसा नहीं न होता ? जब कोई इनसान सुई को उठाता है तभी वह उसके हाथ में आती है। सुई में धागा पिरोना, उससे कमीज सीना- ये सारे काम वह इनसान करता है, न कि सुई या धागा।

लेकिन पार्वती किसी सुई के बिना, सिर्फ अपने हाथों से ही किसी कपड़े को सी नहीं सकतीं। अगर सुई न हो, तो कोई काँटा ही सही। या फिर किसी झाड़ू का सीक तो हो। पार्वती अगर किसी काँटे से कमीज सिल दें, तो वह काँटा औजार होगा। किसी औजार के बगैर, सिर्फ अपने हाथों से कोई कमीज सिल नहीं सकता। मतलब यह कि इस काम को करने के लिए जो भी औजार लगते हों, उनका होना जरूरी है। किसी व्यक्ति के बिना या जरूरी औजारों के बिना कोई काम नहीं हो सकता। पर काम जो भी करना हो, उसे इनसान ही करते हैं, न कि औजार। मतलब यह कि यह कहना गलत होगा कि 'औजार भी

काम करते हैं। जब हम इस बात को ठीक से समझ लेंगे तभी बाद की उन सभी बातों को ठीक से समझ पायेंगे जिनकी हम आगे चर्चा करें।

अभी हमने कमीज का ही उदाहरण देखा है। कोई और उदाहरण लेकर देखें ? तो लीजिए 'कुर्सी' का उदाहरण। कुर्सी भी तो एक चीज है न ? कुर्सियों को इनसान ही बनाते हैं। कुर्सियों बारिश की बूँदों की तरह आसमान से नहीं टपकतीं। क्या वे टपकती हैं ? नहीं न ? तो आइए, एक उत्पाद के तौर पर कुर्सी पर गौर करें।

कुर्सी बनाने के लिए किन-किन चीजों की जरूरत होती है ? कुर्सी का कच्चा माल क्या है ? कुर्सी जिससे बने वही कच्चा माल होगा। कुर्सियाँ किसी धातु की चादर, लकड़ी, बाँस, प्लास्टिक और अनेक चीजों से बनती हैं।

चलिए, हम लकड़ी की कुर्सी लेते हैं। अगर कुर्सी लकड़ी से बनी हो, तो वह लकड़ी ही कच्चा माल होगी। नहीं ? कच्चे माल के तौर पर कुछ और चीजों की भी जरूरत होगी। कील और गोंद जरूरी होगा। कील लकड़ी के अलग-अलग हिस्सों में ठोंके जाने पर उन हिस्सों को एक-दूसरे से बांधे रखते हैं। गोंद लकड़ी के मुख्तलिफ हिस्सों को एक-दूसरे से चिपकाये रखता है। कील और गोंद कुर्सी का हिस्सा बन जाते हैं। इसीलिए ये भी कच्चे माल हैं। कुर्सी इन सब को मिलाकर बनती है। अगर हम कुर्सी को रंग दें, तो यह रंग भी कुर्सी पर चढ़ जाता है और यह भी एक कच्चा माल बन जाता है। कुर्सी अगर रँगनी न हों, तो रंग को छोड़ दें। रंग कोई जरूरी नहीं।

यह रही कुर्सी के कच्चे माल की बात। अब कुर्सी तैयार करने के लिए कौन-कौन से औजार जरूरी हैं ? पहले हमें लकड़ी के मुख्तलिफ हिस्से काटने के लिए आरी की जरूरत होगी। फिर इन हिस्सों को घिस-घिसकर चिकना बनाने के लिए रेती की जरूरत होगी। फिर लकड़ी के इन हिस्सों को कील ठोंककर जोड़ने के लिए हथौड़े की जरूरत होगी। इस तरह कुर्सी तैयार करने के लिए अलग-अलग औजारों की जरूरत होती है तो इस कुर्सी बनाने के काम को आप क्या कहेंगे ?

सवाल और जवाब

1. यहां तीन वाक्य हैं। कौन सा वाक्य सही है ?
(1) कपड़ा कैंची ने काटा, (2) कपड़ा पार्वती और कैंची ने मिलकर काटा, (3) कपड़ा पार्वती ने काटा।

जवाब : आखिरी वाक्य सही है।

2. कैंची क्या करती है ?

जवाब : कैंची कोई काम नहीं करती। औजार काम नहीं करते।

3. औजार क्यों जरूरी हैं ?

जवाब : औजार इसलिए जरूरी होते हैं कि इनसान इनको लेकर काम कर सकें।

4. कोई काम करने के लिए दो चीज़ें जरूरी होती हैं। वे दो चीजें क्या हैं ?

जवाब : (1) इनसान जो उस काम को करे। (2) उस काम को करने के लिए जरूरी कच्चे माल और औजार।

5. कील, हथौड़ा, आरी कच्चा माल है या औजार ?

जवाब : कील कच्चा माल है। हथौड़ा और आरी औजार हैं।

5. कच्चे माल का कच्चा माल!

कुर्सी बनाने के काम को आप क्या कहते हैं? कमीज बनाने के लिए जरूरी काम काटना और सिलना होते हैं न? लकड़ी से चीजें बनाने के काम का भी कोई नाम है। नाम है, 'बढ़ईगिरी।'

मान लें कि कोई अनवर नाम का व्यक्ति है जो लकड़े के तख्ते लेकर कई सारे औजारों का इस्तेमाल करते हुए काम करता हो। अन्त में कुर्सी तैयार हो जाती है। पहले हमने कमीज के मामले में खुद से एक सवाल किया था। यह कि 'कमीज किसने सिली? पार्वती ने या सुई ने?' अब कुर्सी को लेकर भी हमें खुद से वैसा ही सवाल पूछकर जवाब देना होगा। कुर्सी अनवर ने बनायी या आरी और हथौड़े ने? या क्या इन औजारों और अनवर ने सारा काम मिलकर किया? कुर्सी बनाने का सारा काम अनवर ने किया। औजार उसी ओर चले जिस ओर अनवर ने चलाया। औजार अपने आप कुछ नहीं करते। कुर्सी बनायी अनवर ने ही, न कि आरी या हथौड़े ने।

अब चलें, एक और बात देखें। अनवर ने जो कुर्सी बनायी, उसका मुख्य कच्चा माल 'लकड़ी' ही है न? ठीक है। फिर यह लकड़ी कैसे बनी थी? किसने बनायी? बनाने वाले ने इसे किस चीज से बनाया? लकड़ी का कच्चा माल क्या है?

क्या आप जानते हैं कि 'लकड़ी' कैसे मिलती है? लकड़ी के तख्ते किसी पेड़ को काट गिराने के बाद मिलते हैं। तो क्या पेड़ इन लकड़ी के तख्तों का कच्चा माल होगा? पेड़ कच्चा माल होगा या नहीं, यह जानने के लिए हमें यह जानना होगा कि वह पेड़ बड़ा कैसे हुआ? क्या किसी ने उसे बड़ा किया? मतलब यह कि पहले हमें यह जानना होगा कि वह पेड़ जंगल में अपने आप बड़ा हुआ, किसी इनसानी मदद के बगैर? या उस पेड़ को बड़ा करने के लिए कुछ लोगों ने बहुत सारा काम किया ? कच्चे माल की बात हम इसी तरह जान पायेंगे।

पेड़ अगर जंगल में अपने आप बड़ा हुआ हो, तो उसे कच्चा माल नहीं माना जा सकता। तब वह पेड़ कुदरती वस्तु होगा। कच्चा माल वही हो सकता है जो इनसान के श्रम की उपज हो। जंगल का पेड़ ऐसी चीज नहीं जिसे इनसान बनाते हों। मिट्टी में कुदरती तौर पर पाये जाने वाले बीजों के अंकुरित हो जाने पर पौधे अपने आप बढ़ते-बढ़ते पेड़ बन जाते हैं। अगर भीमा नाम के किसी व्यक्ति ने ऐसे किसी पेड़ को काट गिराकर उसके तख्ते बनाये हों, तो फिर उसने यह सारा काम कुदरती तौर पर मौजूद एक वस्तु के साथ किया होगा और उसका यह काम कच्चे माल पर किया जाने वाला काम नहीं।

अब किसी बाग के पेड़ पर गौर करें। बागों में पेड़ लगाने के लिए काफी मेहनत करनी पड़ती है। पहले हल, फावड़ों और गैंतियों से मिट्टी को भुरभुरा बनाना होता है। उसके बाद सालोसाल ढेर सारा श्रम - 'बीज बोना, समय-समय पर पानी देना, निराई-गोड़ाई करना, खाद डालना, कीट नष्ट करना आदि सब करने के बाद ही कहीं बागों में बड़े पेड़ हो पाते हैं। अगर इनसानों के श्रम से उगाये हुए किसी पेड़ को काट कर लकड़ी के तख्ते तैयार कर लिये जायें, तो वह पेड़ उन तख्तों का कच्चा माल होगा। इसलिए कि वह पेड़ इस सारे श्रम से बड़ा हुआ है और इसलिए कि वह कुदरती तौर पर पायी जाने वाली वस्तु नहीं है।

अगर किसी जंगल के पेड़ को काट गिराया गया हो, तो उस पेड़ को कच्चा माल नहीं माना जा सकता। ऐसा पेड़ कुदरती तौर पर पायी जाने वाली वस्तु होगा। यही काम किसी बाग के पेड़ पर किया गया हो, तो उस पेड़ को कच्चा माल माना जा सकता है।

कुर्सी बनाने के लिए लकड़ी के तख्ते कच्चा माल हैं। ठीक है ? लकड़ी के इन तख्तों का स्रोत 'बाग के पेड़' जैसा कच्चा माल हो सकता है या 'जंगल के पेड़' जैसी कुदरती वस्तु। ऐसे किसी स्रोत के बिना हमें लकड़ी के तख्ते नहीं मिल सकते। लकड़ी के तख्ते किसी पेड़ को काटने पर ही मिल पाते हैं।

चलिए, जंगल के पेड़ की ओर चलें। वह यहाँ आया कैसे ? यह उसी जमीन से पैदा हुआ पेड़ है।

जमीन क्या होती है ? क्या वह 'कच्चा माल' है ? नहीं। हमें यह नहीं भूलना होगा कि कच्चा माल वह है जिसे इनसान बनाते हों। क्या जंगल को किसी ने बनाया है ? धरती को किसी ने बनाया है ? नहीं, किसी ने नहीं बनाया। इसीलिए जिस जमीन पर पेड़ हुआ हो वह जमीन उस पेड़ के लिए कच्चा माल नहीं हो सकती। धरती, पहाड़ और जंगल - ये सब कुदरती पदार्थ हैं। इन्हें किसी ने बनाया नहीं होता।

अब चलें, बाग के पेड़ की ओर। इस पेड़ को तो इनसानों ने बड़ा किया है न ? और उन लोगों ने यह काम किसी जमीन पर किया। ठीक ? तो क्या वह जमीन इस पेड़ के लिए कच्चा माल होगी ? नहीं। यह जमीन भी कच्चा माल नहीं हो सकती। अगर मिट्टी को ढीला करने के लिए लोगों को धरती जोतनी पड़ी हो, तो भी यह ज़मीन धरती की जुताई करने के पहले से ही मौजूद रही है। धरती को तो किसी ने बनाया नहीं है। जोतना पेड़ उगाने के लिए किया जाने वाला काम है। यह धरती बनाने के लिए किया जाने वाला काम नहीं है।

जंगल की जमीन की तरह बाग की जमीन भी कुदरती तौर पर ही मौजूद रही है। जमीन किसी भी सूरत में कच्चा माल नहीं हो सकती। इसलिए कि जैसे कपड़ा

कमीज में बदल जाता है या लकड़ी कुर्सी में बदल जाती है वैसे जमीन पेड़ में बदल नहीं जाती। जमीन कहीं से भी कच्चा माल नहीं हो सकती।

फिर पेड़ के लिए कच्चा माल क्या होगा ? पेड़ का कच्चा माल क्या सिर्फ बीज ही होंगे ? सोचिए, इस बात पर!

सवाल और जवाब

1. कुर्सी के लिए कच्चा माल क्या होगा ?

जवाब : कुर्सी बनाने के लिए जिस भी सामग्री का प्रयोग हो, वही उसका कच्चा माल होगा। वह लकड़ी का तख्ता हो सकता है या टीन की चादर या प्लास्टिक, बांस या कुछ भी हो सकता है।

2. कच्चा माल किसे कहते हैं ? वह इनसानों से बनी कोई चीज होगा या कुदरती पदार्थ ?

जवाब : कच्चा माल ऐसी ही चीज़ होगा जिसे इनसानों ने बनाया हो। किसी कुदरती पदार्थ को कच्चा माल नहीं समझना चाहिए। जब इनसान किसी कुदरती पदार्थ पर श्रम करते हैं, तभी वह कुदरती पदार्थ किसी कच्चे माल में बदल जाता है।

3. जंगल में एक पेड़ है। उस पेड़ की शाखा को तोड़कर किसी ने लकड़ी के तख्ते बना लिये हैं। अब क्या वह पेड़ इन तख्तों का कच्चा माल होगा ?

जवाब : नहीं। वह पेड़ जंगल में है और कुदरती पदार्थ है। यह ऐसी चीज़ नहीं जो इनसानों से बनी हो। इसीलिए वह लकड़ी के तख्तों का कच्चा माल नहीं हो सकता।

4. कोई व्यक्ति इन तख्तों से कुर्सी तैयार कर ले तो ?

जवाब : फिर उस कुर्सी के लिए वे तख्ते कच्चा माल हो जायेंगे। इसलिए कि ये तख्ते किसी के हाथ के बने हैं।

5. जंगल का पेड़ तो कुदरती वस्तु होगा न ? फिर हम ऐसे पेड़ से लिये जाने वाले लकड़ी के तख्तों को कुदरती वस्तु क्यों नहीं मान सकते ?

जवाब : किसी वस्तु को कुदरती वस्तु तभी माना जा सकता है जब वह उसी रूप में हो जैसे कुदरती तौर पर मौजूद रही हो। इनसान उसमें थोड़ा भी फेरबदल करें, तो वह कुदरती वस्तु नहीं रह जाती। जंगल का पेड़ तो कुदरती वस्तु है। लेकिन लकड़ी के तख्ते कुदरती वस्तु नहीं, क्योंकि इनको किसी ने बनाया होता है।

6. क्या इस तरह का कोई और उदाहरण है ?

जवाब : जंगल की धरती में पाये जाने वाले कन्द-मूल कुदरती वस्तु हैं। लेकिन जैसे ही कोई व्यक्ति किसी कन्द को वहाँ से उखाड़ लेता है, वह कुदरती वस्तु नहीं रह जाता।

7. किसी बाग के पेड़ का कच्चा माल क्या होगा ? चूँकि वह मिट्टी में पैदा हुआ है, क्या मिट्टी उसका कच्चा माल होगी ?

जवाब : नहीं। मिट्टी यानि धरती किसी भी चीज का कच्चा माल नहीं हो सकती। धरती की सतह पर बहुत सारे पेड़ हो जाते हैं। भूमि पर बहुत सारे कार्य होते रहते हैं। फिर भी धरती कोई कच्चा माल नहीं होती।

8. जंगल और पहाड़ क्या हैं ?

जवाब : ये कुदरती पदार्थ हैं।

9. फूल कुदरती पदार्थ है या कोई वस्तु ?

जवाब : यह जाने बगैर कि फूल कैसे उग आया है, हम इसका जवाब नहीं दे सकते। अगर यह फूल जंगल के किसी पेड़ पर खिला हो, तो कुदरती पदार्थ है। अगर किसी बाग में या घर के पिछवाड़े में इनसानी श्रम से उगाया गया हो, तो वस्तु है : एक जीवित वस्तु।

(स्रोत : किताब ''बच्चों के लिए अर्थशास्त्र'')

लेखक : रंगनायकम्मा

पृष्ठ 6 का शेष

अनुरोध करने पर ही उसका पति सतपाल उसके साथ परामर्श केन्द्र पर आया था। अब मैंने मोनिका के पश्चात् सतपाल के साथ भी मनोवैज्ञानिक तौर पर काऊंसलिंग की और उस के साथ उसके अवैध संबंधों के बारे में खुल कर बातचीत की। पहले पहल तो वह इन से इन्कार करता रहा परन्तु मेरे द्वारा मनोवैज्ञानिक काऊंसलिंग के दौरान डाले गये मानसिक प्रभाव के आगे उसने अपने हथियार डाल दिये तथा आगे से सही रास्ते पर चलने का आश्वासन दिया। उसके पश्चात् उन के घर में कभी भी कोई अप्रिय घटना नहीं घटी तथा वे दोनों पति-पत्नी प्रसन्नतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

नोट : यह एक सत्य घटना है। परिस्थितिवश पात्रों के नाम बदल दिए गए हैं।

दुष्कर्म के दोषी जलेबी बाबा को 14 साल कैद की सजा

महिलाओं को चाय में नशीला पदार्थ पिला कर करता था दुष्कर्म

धनपत सिंह धारसूल
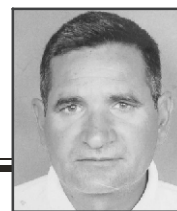
तंत्र-मंत्र की आड़ में महिलाओं को नशीला पदार्थ पिला कर दुष्कर्म करने वाले जलेबी बाबा के नाम से मशहूर रहे हरियाणा के टोहाना कस्बा (जिला फतेहाबाद) के बिल्लू उर्फ अमरवीर को दुष्कर्म के दोष में एडीजे बलवंत सिंह की फतेहाबाद की सेशन कोर्ट ने 10 जनवरी 2023 को 14 साल की सजा सुनाई। दोषी बाबा को नाबालिग से दुष्कर्म में पोक्सो में 6 साल व 376सी में 7 साल और आईटी एक्ट में 5 साल की सजा सुनाई गई है। सभी सजाएं एक साथ चलेंगी।आरोपी को 5 जनवरी 2023 को अदालत ने दोषी करार दिया था। वह गिरफ्तारी के बाद से जेल में बंद था। पुलिस को आरोपी की 120 महिलाओं के साथ अश्लील वीडियो क्लिप मिली थी।

टोहाना की एक महिला ने साल 2018 में आफिसर कॉलोनी के बाबा बालक नाथ आश्रम संचालक अमरवीर उर्फ बिल्लू बाबा पर अश्लील वीडियो बना कर तीन साल तक दुष्कर्म करने का आरोप लगाया था। इस मामले में एक नाबालिग लड़की सहित 6 महिलाओं ने दुष्कर्म करने के बयान दर्ज करवाए थे। दुष्कर्मी बाबा पर केस टोहाना के तत्कालीन सिटी थाना एस एच ओ. प्रदीप कुमार की शिकायत पर 19 जुलाई 2018 को दर्ज किया गया था। मौके पर आश्रम से बरामद सीडीज में 120 महिलाओं के साथ दुष्कर्म करने का पर्दाफाश हुआ था। इस मामले में एक नाबालिग सहित 5-6 महिलाएं ही सामने आई थी, जो अपने बयानों पर टिकी रही। मामले में पीड़ित पक्ष की ओर से एडवोकेट संजय वर्मा, विजय रंगा व सरकारी वकील ओपी बिश्नोई ने पैरवी की।

मूल रूप से मानसा का रहने वाला है दुष्कर्मी बाबा

महिलाओं से दुष्कर्म करने वाला विवादित बाबा अमरवीर उर्फ बिल्लू मानसा का रहने वाला है। 8 साल की आयु में वह दिल्ली के एक बाबा के पास जाकर रहने लगा था। दस साल बाद वह वापिस अपने घर मानसा लौट आया। इसी दौरान उसकी शादी कर दी गई। अब उसके उपर परिवार चलाने की जिम्मेदारी आ पड़ी। काम की तलाश में वह अपनी पत्नी को साथ लेकर टोहाना आकर रहने लगा। उसने यहां की नेहरू मार्केट में सड़क किनारे रेहड़ी लगा कर जलेबी बनाने का काम शुरू कर दिया। जलेबी बनाने का काम अच्छा चलने पर उसका शहर में नाम मशहूर हो गया। रेहड़ी पर जलेबी लेने शहर की काफी महिलाओं का आना जाना लगा रहता था। इसी दौरान महिलाओं को उसने तंत्र-मंत्र की आड़ में प्रभावित करना शुरु कर दिया। यहीं से उसने जलेबी बनाने के साथ तंत्र मंत्र का काम करना आरंभ कर दिया। लोग अब उसको जलेबी बाबा के नाम से पुकारने लगे। उसने धीरे धीरे जलेबी बनाने का काम कम व तंत्रमंत्र के काम में रुझान बढ़ा दिया और एक दिन उसने रेहड़ी का काम छोड़ आफिसर कॉलोनी में जमीन खरीद कर बाबा बालक नाथ के नाम पर अपना आश्रम बना लिया।

अब आश्रम में जलेबी बाबा उर्फ अमरवीर तंत्र मंत्र के माध्यम से दुख तकलीफ दूर करने का दावा कर लोंगों को प्रभावित करने लगा। इसके लिये उसने कई युवकों को प्रचार प्रसार करने में लगा दिया था। बाबा के पास पुरुषों की बजाय महिला अनुयायियों की संख्या अधिक होने लगी। महिलाओं की पारिवारिक समस्याओं व अन्य दुख तकलीफों का इलाज करने की आड़ लेकर उसने उनका शारीरिक शोषण करना शुरू कर दिया। बाबा महिलाओं को चाय में नशीला पदार्थ पिला कर अपनी हवस का शिकार बनाता व उसकी मोबाइल से वीडियो रिकॉर्डिंग करता रहा। उसके

शेष पृष्ठ 31 पर

बागेश्वर धाम के धीरेन्द्र शास्त्री नए नहीं हैं, कोई इन्हें स्वीकार नहीं करता है

आशीष आनंद

महाराष्ट्र की अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति एक बार फिर चर्चा में है, जब इस समिति के श्याम मानव ने बागेश्वर धाम के धीरेन्द्र शास्त्री को साधारण चुनौती दे दी। इस तरह की चुनौती का चिलचिलापन तर्कशील आंदोलन में नया नहीं है। कुछ चमत्कार तो दशकों से टिके हुए हैं और उनके चमत्कार को स्वीकार करने वाले व्यक्ति को पुरस्कार की राशि करोड़ों में पहुंच गई है।

जिनको किसी ने स्वीकार नहीं किया है। डॉ.कोवूर ने दशकों पहले ये चुनौती दी थी दुनिया भर के पीर-फकीर, ज्योतिष, सिद्ध पुरुषों, बाबाओं, जादूगरों को, कि इनमें से कोई एक भी काम कर देगा तो उन्हें नकद इनाम दिया जाएगा। इस चुनौती के बाद बी प्रेमानंद ने और उनके आंदोलन से जुड़े तमाम तर्क-चिंतकों ने काम जारी रखा है।

ये हैं करोड़ों के चैलेंज

1. भूत-प्रेत, जिन्न को साबित करने वाले।

2. तांत्रिक, स्याणा (घुड़ल्या) झाड़-फूंक द्वारा शक्ति दिखाना।

3. किसी शक्ति द्वारा किसी भी व्यक्ति पर मूठ (चौकी) छोड़ना।

4. किसी भी गंडा, ताबीज, लॉकेट, अंगूठी आदि द्वारा शक्ति दिखाएं।

5. नजर, टोक लगाने व देखने वाले को।

6. यंत्र, मंत्र, तंत्र द्वारा कोई भी शक्ति सिद्ध करने वाले को।

7. गुम हुई वस्तु को खोजना।

8. पानी को शराब/पेट्रोल में बदल देने पर।

9. पानी के ऊपर पैदल चलना।

10. योग/देव शक्ति से हवा में उड़ सके।

11. सील बंद नोट का नंबर पढ़ना।

12. लॉक लगे कमरे में से शक्ति से बाहर आ सके।

13. अपने शरीर को एक स्थान पर छोड़कर किसी दूसरे स्थान पर दिखाई दें।

14. जलती हुई आग पर अपने देवता की सहायता से बिना जले 1 मिनट तक खड़ा हो सके।

15. ऐसी वस्तु, जो मांगें, उसे हवा में से प्रस्तुत कर सकते हैं।

16. प्रार्थना, आत्मिक शक्ति, गंगा जल, या भभूत से पवित्र शरीर के अंग को/वस्तु को पांच इंच तक बढ़ा सके और शरीर का भार (वजन) बढ़ा या कम कर सके।

17. पुनर्जन्म के कारण कोई अद्भुत भाषा बोल सकता हो ।

18. ऐसी आत्मा या भूत-प्रेत को पेश कर सकते हैं, जिसकी फोटो ली जा सकती है और फोटो लेने के बाद फोटो से गायब हो सकते हैं। ऐसे ज्योतिषी जो यह देश के लोगों को बताते हैं कि ज्योतिष और हस्त रेखा एक विज्ञान है, ऊपर इनाम को जीत सकते हैं, यदि वे दस हस्त चित्र व दस ज्योतिष प्रकाशित (जन्म कुण्डली) को देखकर मनुष्य और और की अलग-अलग संख्या व जन्म का ठीक समय व स्थान अक्षर रेखा के साथ बताएं।

नरेंद्र दाभोलकर-डॉ. नरेंद्र दाभोलकर (मराठी) महाराष्ट्र, भारत के एक प्रमुख तर्कवादी और कई पुस्तकों के लेखक हैं।

अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति ने वास्तव में अपना काम कानूनी दायरे में रह कर किया है और महाराष्ट्र में कानून के आधार पर कार्यवाही की है। संविधान भी समाज में वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा करने की बात करता है, लेकिन इस मामले को अब ऐसा रंग दिया जा रहा है, जिसके नतीजे घातक हो सकते हैं। यही समिति अपने प्रमुख अगुवा डॉ.नरेंद्र दाभोलकर को खो चुकी है, उनके कट्टरपंथियों ने हत्या कर दी, जिसके ये सामने आ चुके हैं कि हत्यारे कौन थे।

इस समिति को महाराष्ट्र से बाहर के लोग शायद खास नहीं जानते। जबकि सच यह है कि यह समिति एक बड़े आंदोलन का हिस्सा है। यह तर्कशील आंदोलन है। इस आंदोलन में देश के लगभग सभी राज्यों से ऐसे संगठन जुड़े हुए हैं, जो अंधविश्वास, अंधश्रद्धा फैलाने वालों की पोल खोल रहे हैं और वैज्ञानिक आशंकाओं से सच्चाई बता रहे हैं। उनका सामूहिक संगठन फिरा- FIRA यानी फेडरेशन ऑफ रैशनलिस्ट एसोसिएशन है।

आधुनिक तर्कशील आंदोलन के जनक कहने वाले अब्राहम टी कोवूर के बाद बी प्रेमानंद ने इस अभियान की कमान संभाली। 17 फरवरी, 1930 को कोझीकोड (केरल) में पैदा हुए और उनका देहांत 79 साल की उम्र में चार अक्टूबर 2009 में हुआ। उनकी इच्छा के अनुसार उनके पार्थिव शरीर को स्थानीय मेडिकल कॉलेज को प्रदान कर दिया गया। बी प्रेमानंद को उत्तर भारतीय बहुत कम जानते हैं। परन्तु उनकी कोशिश से आज देश में खामोशी से तर्कशील आंदोलन तैयार हो गया है, जिससे झूठ, फरेब, पाखंड की बुनियाद पर समाज को पीछे धकेलने वाले घबराहट कर रहे हैं।

बी प्रेमानंद ने आध्यात्मिक अंतर्दृष्टि प्राप्त करने के लिए कई स्वामी और गुरुओं से संपर्क किया, लेकिन जल्द ही उनका भ्रम टूट गया जब पता चला कि वे पाखंड करते थे। फिर 1969 में, उनकी मुलाकात स्पष्ट तर्कवादी डॉ. अब्राहम कोवूर से हुई, जो 'चमत्कार का पर्दाफाश' लेक्चर के लिए भारत में थे। यह प्रेमानंद के जीवन का अहम मोड़ था, जो आध्यात्मिक चालबाजों को जांचने के अभियान में मील का पत्थर साबित हुआ।

1978 में डॉ. अब्राहम कोवूर के देहांत के बाद प्रेमानंद ने कोवूर की प्रसिद्ध चुनौती को जारी रखा, जो धोखाधड़ी रहित-सबूत के तहत मानसिक क्षमता का प्रदर्शन करने वाले किसी भी व्यक्ति को एक लाख रुपये की पेशकश करता था।

तीन दशक से अधिक समय तक प्रेमानंद ने भारत के तमाम गांवों और चौकियों का दौरा किया और पांखडी संतों और उनके चमत्कारों का पर्दाफाश किया, और आम लोगों के लिए विज्ञान युक्ति लगाने का काम किया, सार्वजनिक लेक्चर और प्रदर्शन करते रहे।
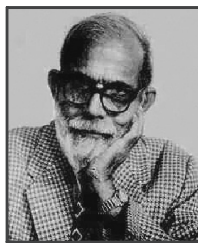
उन्होंने तर्क-वितर्क करते हुए सोच-समझकर मिशन के साथ 49 देशों का दौरा किया। वैज्ञानिक जागरूकता के प्रसार के लिए उनके प्रयासों के लिए उन्हें भारत सरकार के राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी संचार परिषद ने फैलोशिप दी।

श्याम मानव ने धीरे-धीरे धीरेंद्र शास्त्री पर स्टेट केस दर्ज कराया, लेकिन प्रेमानंद का सबसे सनसनी खेज पर्दाफाश था- पुट्टपर्थी साईं बाबा की पोल खोली।

एक बार उन्होंने उच्च न्यायालय में साईं बाबा के खिलाफ इंडियन गोल्ड कंट्रोल एक्ट के तहत एक दीवानी रिट याचिका भी दायर की थी। वह चाहते थे कि सरकार साईं बाबा के खिलाफ 'हवा से सोना बनाने' के दावे और नाटकीयता पर कार्रवाई करे, क्योंकि यह गोल्ड कंट्रोल एक्ट की धारा 11 का उल्लंघन था, जिसमें सोने के निर्माण के लिए गोल्ड कंट्रोल एडमिनिस्ट्रेटर की अनुमति अनिवार्य थी।
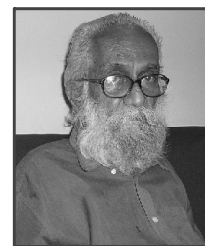
यह देखते हुए कि भारतीय समाज के सभी स्टेटों में संतों का दबदबा है, यह बिल्कुल भी आश्चर्य की बात नहीं है कि इस मामले को अदालत ने खारिज कर दिया। मौजूदा समय में भी कुछ ऐसा ही दिखाई देता है, जिसमें इस समय मेनस्ट्रीम मीडिया से जुड़ा तर्क और विज्ञान की जगह अंधविश्वास का आम प्रचार-प्रसार दिख रहा है। इस सांप्रदायिक ध्रुवीकरण को भी हवा देने की कोशिश हो रही है।

बहरहाल, अपने समय में प्रेमानंद ने 6 जून 1993 को साईं बाबा के संबंधी अभिलेखों का एक विशाल संग्रह और पुस्तक 'साईं बाबा के रिश्ते में हत्या' को प्रकाशित किया।

यह किताब उन लोगों के लिए सबसे सटीक तथ्य संग्रह है, जो अजर में संदिग्ध व्यवहार के पीछे की सच्चाई जानना चाहते हैं।

दो दशक से अधिक समय तक प्रेमानंद ने तर्कवाद

और वैज्ञानिकता के प्रसार को समर्पित मासिक पत्रिका 'इंडियन स्केप्टिक्स' प्रकाशित की। यह पत्रिका बेहिसाब धार्मिक देश में विभिन्न तर्कवादी और व्यक्तियों के बीच अनमोल थी।

'स्केप्टिक्स बुक क्लब' के माध्यम से उन्होंने संतों और उनके कार्यों को उजागर करने वाली कई पुस्तकें निकाली। उनकी सबसे लोकप्रिय किताब, ''साइंस वर्सेज मिरेकल'', लगभग 150 काल्पनिक चमत्कारों की प्राकृतिक व्याख्याएं हैं, जिनमें भारत में आमतौर पर भगवान के नाम पर किए जाने वाले चमत्कार शामिल हैं।

अप्रैल 2007 में पुणे में अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति, महाराष्ट्र ने भारत में तर्कवादी आंदोलन में योगदान के लिए उन्हें सम्मानित किया।

प्रेमानंद ने 2008 के अंत तक मिशन को आगे बढ़ाने का एक भी मौका नहीं छोड़ा। हर महीने ''**इंडियन स्केप्टिक्स**'' को प्रकाशित करना जारी रखा था और अपने स्केप्टिक्स बुक क्लब के माध्यम से तर्कवाद पर किताबें प्रकाशित करते रहे। दिसंबर 2007 में तिरुवनंतपुरम में आयोजित केरल पर्यवेक्षक संगम (केरल तर्कवादी संघ) के 25वें राज्य सम्मेलन में और FIRA के छठवें सम्मेलन में भाग लिया।

यहां तक कि खराब स्वास्थ्य के बावजूद उन्होंने 5 मार्च 2009 को तमिलनाडु के पोदनूर में विज्ञान की विधि पर एक स्थायी प्रदर्शनी का पूरा लेखा-जोखा खोला और सार्वजनिक रूप से खोला।

तर्कवादी विश्वासों पर उनकी संस्था एक प्रेरक दस्तावेज है, जो कई तर्कवादी और विज्ञान से संबंधित वेबसाइटों और पत्र-पत्र की पर्चियों में मौजूद हैं। बागेश्वर धाम के धीरेन्द्र शास्त्री के लिए इस आंदोलन का सामना करना तब तक मुश्किल रहेगा, जब तक कि वह चमत्कार का दावा नहीं जीत जाता। दूसरे ओर लॉजिक रिएक्शंस के लिए भी हैं, जो डॉ . दाभोलकर के बलिदानों को देखते हैं ।

स्रोतः इंडियन स्केप्टिक्स

अंधविश्वास के विषाक्त सांप को मारना बहुत जरूरी

राधा मोहन गोकुल

क्या आज इस बीसवीं शताब्दी के वैज्ञानिक युग में सिवा बज्र मूर्खों के कोई भी समझदार चतुर, पढ़ा-लिखा, जानकार आदमी विश्वास कर सकता है कि भूत, प्रेत, राक्षस, जिन, डाकिनी, शाकिनी, यक्षिणी, पिशाचिनी, कूष्माण्ड, भैरव, भूमिया या सय्यद किसी रोगी को निरोग करने की शक्ति सम्पन्न अस्तित्व रखते हैं? कुत्ते-बिल्ली के बाल, उल्लू के पर, गधा-लोटन की धूलि, घोर काले कौवे के नीड़ की लकड़ी आदि के सद्‌गुणों पर सिवा बिगड़े दिमागों के कौन भरोसा कर सकता है? गण्डे-तावीजों, भूतों, प्रेतों का ढकोसला पुराने जमाने के अन्धविश्वासियों और असभ्य जंगलियों को ही ठीक जँच सकता था, पढ़ा-लिखा जानकर आदमी कब इनके भरोसे अपना जीवन नष्ट कर सकता है?

पहले जमाने में लोग मान लेते थे कि जनार्दन की धूप जलाने से भूत भाग जाते हैं, बया (पक्षी) का नीड़ घर में लटकाने से चुड़ैल नहीं आती, घुग्घू (उलूक) की आँखों को बत्ती में रख कड़ुए तेल का काजल बनाकर आँखों में लगाने से बच्चों पर टोना असर नहीं करता और धरती के अन्दर का गड़ा हुआ धन दिखलाई देने लगता है। आजकल विज्ञान के प्रकाश में पले हुए लोगों के शुद्ध पवित्र मस्तिष्क में ऐसी बातों का प्रवेश कठिन होता जाता है। हमें चाहिए कि हम अशिक्षित ग्रामीणों और अन्धकार में पड़ी हुई स्त्री जाति के दिलों को अपने इस प्रकाशमय युग के ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करें और अन्धविश्वास के विषाक्त सर्प को मार कर गाड़ दें।

कहानी तालीम की लड़ाई की, कहानी समाज बदलने के संघर्ष की

प्रो० वसी अहमद

यह कहानी है– महाराष्ट्र की दो बेमिसाल महिलाओं, सावित्री बाई फुले और फातिमा शेख की। इन दोनों की जन्मभूमि अलग–अलग है, पर कर्म–भूमि एक है। सावित्री बाई फुले का जन्म 3 जनवरी 1831 ई० में बम्बई प्रेसीडेंसी के सतारा जिले के नया गाँव में हुआ था। फातिमा शेख का जन्म उसी साल 9 जनवरी को पुणे में हुआ। महाराष्ट्र की ये दोनों महिलाएँ हिम्मत, हौसले, लगन, सब्र और तपस्या की अनोखी मिसाल है। ये दोनों महिलाएँ पूरी ज़िंदगी इस तरह संघर्षशील रही जैसे दो जिस्म एक जान हों।

सावित्री बाई फुले नौ बरस की उमर में ज्योति राव फुले के साथ शादी के बाद सतारा से 1840 ई. में पुणे आ गईं, तब ज्योति राव फुले भी 13 बरस के ही थे। ज्योति राव फुले ने जब जाति भेदभाव, छूआछूत, सामाजिक उत्पीड़न और अत्याचार के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करनी शुरू की, तो तथाकथित उच्च जाति के लोगों का भारी विरोध शुरू हुआ और बढ़ता ही गया।

शक्तिशाली वर्ग के लोगों का सामना करने की हिम्मत और ताकत ज्योति राव फूले के पिता में नहीं थी। सामाजिक दबाब में आकर उन्होंने अपने पुत्र को साफ–साफ कह दिया कि तुम या तो अपने विचार बदलो और आंदोलन बंद करो या मेरा घर छोड़ दो। ज्योति राव ने घर छोड़ना मंजूर किया और आंदोलन जारी रखा। ज्योति राव फुले के दोस्त उस्मान शेख ने उन्हें अपने घर में पनाह दी। सावित्री बाई फुले को यहीं अपनी सबसे पक्की सहेली यानी फातिमा शेख मिलीं। फातिमा उस्मान शेख की बहिन थीं। यह बहनापा और दोस्ती ऐसे परवान चढ़ी कि जिससे एक खामोश इंकलाब का जन्म हुआ।

सावित्री बाई अपने पति से पढ़ना–लिखना सीख चुकी थीं। उन्होंने अब फातिमा शेख को पढ़ना–लिखना सिखाया और इस तरह सावित्री बाई हिन्दुस्तान की पहली महिला शिक्षिका बनीं और फातिमा शेख पहली छात्रा बनीं। उसी समय ज्योति राव फुले वंचित समाज की लड़कियों और महिलाओं को पढ़ाने की बात सोच रहे थे। जल्द ही उस्मान शेख के घर में लड़कियों की पढ़ाई का काम शुरु हो गया और दलित और वंचित समाज की लड़कियाँ छुप–छुप कर पढ़ने के लिए आने लगीं।

1848 में हिन्दुस्तान में लड़कियों का पहला स्कूल पूणे में स्थापित हुआ। 1848 एक ऐतिहासिक वर्ष है। इसी साल 21 फरवरी को कार्ल मार्क्स और फ्रेड्रिक एंगेल्स का काम्युनिस्ट मेनिफेस्टो प्रकाशित हुआ। ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई और फातिमा शेख की तालीम और सामाजिक बदलाव की लड़ाई की पृष्ठभूमि मार्क्स के कम्युनिस्ट मैनिफैस्टों की पृष्ठभूमि से अलग है।

यह वह जमाना है जब महाराष्ट्र में पेशवा राज ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की महार बटालियन के हाथों समाप्त हो चुका है, लेकिन पुरानी सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह बरकरार थीं, जिसमें किसानों आम लोगों, दलितों और वंचित समाज की सभी जातियों और महिलाओं के लिए कोई जगह नहीं थी, उन्हें कोई अधिकार नहीं था। हर तरह गुलामी की जंजीरों में सभी जकड़े हुए थे। ज्योति राव माली जाति के थे और वे अपने समय की जकड़नों को जानते थे और समझते थे। वे समझ चुके थे कि मनुवादी सामाजिक ढाँचे में सुधार की कोई गुंजाइश नहीं है, उसको पूरी तरह बदलना ज़रूरी है।

उस समय की सामाजिक व्यवस्था को समझने के लिए ज्योति राव फुले की लिखी किताब ''गुलामगीरी'' को पढ़ना ज़रूरी है। यह किताब 1875 में छपी थी। महात्मा बुद्ध की तरह ज्योति राव, सावित्री बाई और फातिमा शेख भी समाज को बदलने में शिक्षा की भूमिका को अच्छी तरह जानते थे। वे जानते थे कि आजादी और

बराबरी के साथ ही लिंग आधारित भेदभाव को मिटाने के लिए मर्दों और औरतों दोनों के लिए शिक्षा जरूरी है। उन्होंने किसी पुस्तक या किसी धार्मिक ग्रंथ को न तो फाड़ा और ना ही जलाया, बल्कि सामाजिक बदलाव के विचार को अपनी रोजाना की जिंदगी में शामिल किया और उन आदर्शों को जी कर दिखाया।

ज्योतिराव फुले से प्रभावित होकर डॉ. भीम राव अम्बेडकर ने उन्हें अपना गुरु माना था। एक बार सावित्री बाई और फातिमा शेख की तस्वीरों को जरा गौर से देखिए, ना तो सावित्री बाई फुले का चेहरा किसी घूँघट से ढका है और ना ही फातिमा शेख का चेहरा किसी नकाब या बुर्के में छिपा है। कल्पना कीजिए कि यह 1840 का समय है। मनुवादी समाज और सोच अपनी पूरी ताकत के साथ मौजूद है। लेकिन ये दो औरतें समाज को बदलने की बुनियाद चुपके से डाल रही हैं। वे दोनों पर्दे के पुराने रिवाज को नकार कर सामने आ चुकी हैं। यह एक खामोश क्रांति की शुरुआत नहीं तो और क्या है?

यह वह समय है जब न्यूजीलैंड की महिलाएं 1853 में वोट देने के अधिकार के लिए सड़कों पर उतरी थीं। उसी 8 मार्च को अमरीका की गार्मेंट फैक्टरी की महिलाएँ काम के घंटे 14 से घटाकर 10 घंटे करने की माँग को लेकर सड़कों पर संघर्ष कर रही थीं। 18 मार्च 1917 को रूसी क्रांति के समय महिलाओं का विशाल जुलूस निकला था। 8 मार्च 1937 को स्पेन की तानाशाही सरकार के खिलाफ औरतें आंदोलन कर रही थीं। पर इन सबसे कहीं पहले 1840 में हिन्दुस्तान की ये दो महिलाएँ फातिमा शेख और सावित्री बाई वंचित और दलित समाज की महिलाओं की तालीम की लड़ाई की बुनियाद रख रही थीं।

औरतों को तालीम की इस लड़ाई को और उसके खिलाफ शोषक वर्ग और समाज के ठेकेदारों के विरोध के कारणों को समझना जरूरी है। 1818 में पेशवा राज का पतन हो चुका था। महाराष्ट्र के ब्राह्मणों में निराशा और क्रोध का माहौल था। दलितों और महिलाओं की पढ़ाई का आंदोलन मनुवादी व्यवस्था पर एक गहरी चोट थी। पेशवाओं का विरोध स्वाभाविक था। जैसे-जैसे नये स्कूल खुलने लगे वैसे-वैसे तथाकथित उच्च जाति के लोगों का विरोध भी बढ़ता गया। वे कभी उन पर गोबर फेंकते, कभी कीचड़ फेंकते और कभी पत्थरबाजी करवाते। लेकिन गाली-गलौज, कीचड़-गोबर की बौछार और पत्थरबाजी से उन दो औरतों के हौसले और इरादे पर कोई असर नहीं पड़ा। बल्कि यह आंदोलन पुणे से निकलकर बम्बई पहुँच गया और फातिमा शेख को 1851 में दो स्कूल खोलने में कामयाबी मिल गयी।

भारत के इतिहास मे बौध मठों के विनाश के बाद एक बार फिर से औरतों के हाथ में किताब-कलम वापिस आई थी। बौध मठों में ही दुनिया में पहली बार औरतों ने पढ़ना-लिखना सीखा था। अब एक बार फिर से दलित-आदिवासी, मुस्लिम और अछूत बच्चे-बच्चियाँ स्कूल जाने लगी थीं।

सावित्रीबाई फुले और फातिमा शेख के काम को महज तालीम की लड़ाई तक सीमित करके देखना उनके साथ नाइंसाफी होगी। ज्योतिराव, सावित्री बाई और फातिमा शेख के संघर्ष का दायरा काफी बड़ा है और इसमें वैचारिक परिपक्वता है। उनके सामने यह भी साफ था कि क्या करना है और कैसे करना है। उन लोगों ने बिना नारेबाजी किये या ढोल पीटे समाजिक बदलाव के काम को व्यावहारिक रूप देना शुरू कर दिया :

- सत्यशोधक समाज की स्थापना की।
- विधवाओं का सिर मुँड़ने के रिवाज को बंद करने के लिए हज्जामो को उनके सिर मुँडने से इन्कार करने के लिए राजी कर लिया।
- पहला विधवा विवाह महाराष्ट्र में 1873 में संपन्न हुआ।
- बाल विवाह की समाप्ति के लिए आंदोलन खड़ा किया।
- शूद्र जाति के लोगों को गाँवों के सार्वजनिक कुओं से पानी लेने की इजाजत नहीं थी। सावित्री बाई ने महिलाओं के साथ मिलकर उनके लिए पहला कुआँ खोदने का काम किया।
- बलात्कार की शिकार गर्भवती महिलाओं के सुरक्षित प्रसव के लिए और बहिष्कृत महिलाओं और बच्चियों के लिए महिला सेवा घर की स्थापना की।

- अंतरजातीय विवाह की भी शुरूआत की।
- तालीम के आंदोलन के लिए 1853 में ऐजुकेशन सोसाइटी की स्थापना की।
- अनाथ बच्चे को गोद लेने के लिए लोगों को प्रेरित किया और सावित्री बाई ने खुद विधवा सेवा घर की एक विधवा के बच्चे को गोद लिया और उसे यशवंत राव का नाम दिया।

जब 1880 में ज्योति राव फुले का देहांत हुआ तो सावित्रीबाई ने उनकी चिता को आग देकर पुरुषवादी सोच को गहरी चोट दी। लिंगभेद को दूर करने के लिए भी प्रयास जारी रखे। 1890 के दशक में जब महाराष्ट्र में प्लेग की महामारी शुरू हुई तो रोगियों की देखभाल के लिए 1897 में एक क्लिनिक खोलकर उनकी सेवा शुरू की गई। उसी दौरान वे भी प्लेग रोग से संक्रमित हो गयीं और 10 मार्च 1897 को उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी मौत के बाद भी फातिमा शेख ने आंदोलन को कमजोर नहीं पड़ने दिया। लेकिन 3 साल बाद यानी 9 अक्तूबर 1900 को वे भी इस दुनिया को अलविदा कह गई। सावित्री बाई ने दो पुस्तकें भी लिखीं है। पढ़ाई को प्रोत्साहित करने के लिए उनकी कई कवितायें भी हैं। आज उनके नाम पर पुणे में एक विश्वविद्यालय है और फातिमा शेख के नाम का पुणे में एक सड़क है। सावित्री बाई के जीवन पर दूरदर्शन का एक नाटक भी है और भारत सरकार ने एक डाक टिकट भी जारी किया था।

ज्योति राव फुले, फातिमा शेख और सावित्री बाई फुले ने जो मशाल रौशन की उसकी रौशनी दूर तक और देर तक फैलती रही। एक चिराग से हजार चिराग रौशन हुए। ज्योति राव फुले से प्रभावित होकर छत्रपति साहूजी महाराज जब 1894 में कोल्हापुर की रियासत की गद्दी पर बैठे तो उन्होंने वंचित समाज और दलितों के उद्धार के काम को आगे बढ़ाया। साहूजी महाराज कोल्हापुर की रियासत के राजा तो थे, लेकिन शूद्र समाज से आते थे, इसलिए उन्हें ऊँची जाती के लोगों के विरोध का बार-बार सामना करना पड़ा था। लेकिन उन्होंने सभी जाति और धर्म के बच्चों के लिए कई स्कूल खोले और हॉस्टल बनवाए। उन स्कूलों में बच्चों के पढ़ने और रहने की मुफ्त व्यवस्था करवाई।

तालीम की लड़ाई या नारी मुक्ति का यह आंदोलन महाराष्ट्र या बम्बई प्रेसीडैंसी तक सीमित नहीं था। उसी समय बंगाल और मद्रास प्रेसीडेंसी में भी यह आंदोलन अलग-अलग रूपों में महिलाओं द्वारा चलाया जा रहा था। भारत के पुनर्जागरण में नारी आंदोलन ने जो ऐतिहासिक भूमिका अदा की वह आज भी नजर से ओझल है। महिला आंदोलन के सभी रूपों की चर्चा यहाँ सम्भव नहीं है, पर उनमें कुछ महिलाओं के कारनामों की हल्की झलक से आप अंदाज़ा कर सकेंगे कि उन मुश्किल दिनों में उन्होंने जो काम किया और जो जोखिम उठाया उसके पीछे किस तरह का जोश, इरादा और हौसला था। उन्होंने जो ठाना, उसे कर दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ी।

ऐसी ही एक महिला है पंडिता रमाबाई जिनका जन्म महाराष्ट्र के एक ब्राह्मण परिवार में 23 अप्रैल 1858 ई. में हुआ। 12 साल की उमर में संस्कृत के 8000 श्लोक याद करने वाली ये शायद पहली महिला होंगी। पहले पिता के साथ और उनकी मृत्यु के बाद भी उन्होंने धार्मिक प्रवचन में वह मुहारत हासिल की जिससे कलकत्ता विश्वविद्यालय ने उन्हें पंडिता की उपाधि दी। जब उन्हें अंदाज़ा हुआ कि इन श्लोकों और ग्रंथों में औरतों की हैसियत जानवर से भी बदतर है, तो उन्होंने समाज के रस्मों-रिवाज और ग्रंथों से नाता तोड़ लिया और जिंदगी पर बराबरी और आजादी की लड़ाई लड़ती रहीं। एक गैरब्राह्मण से शादी करके अंतरजातीय विवाह को बढ़ावा दिया और जब महाराष्ट्र की रूखमाबाई अपनी पढ़ाई के लिए अपने पति और परिवार से संघर्ष कर रही थीं और पति द्वारा मुकद्मा और जेल की सजा का मुकाबला कर रही थी, उस समय पंडिता रमाबाई इनके साथ खड़ी हो गईं और यह सुनिश्चित किया के वे लंदन जाकर अपनी डॉक्टरी की पढ़ाई पूरी कर सकें।

ऐसी ही एक कहानी है बिहार की अघोर कामिनी की। उनका जन्म 1838 में बंगाल में हुआ, पर उन्होंने

बाद में पटना के बांकीपुर को अपनी कर्मभूमि बनाई। 1892 में गोलघर के पास 9 लड़कियों को लेकर एक स्कूल स्थापित किया, जो आज भी बांकीपुर गर्ल्स हाई स्कूल के नाम से चल रहा है। बाद में पटना के खजांची रोड में भी लड़कियों का एक स्कूल खोला। पटना संग्रहालय के पास एक महिला शिल्पालय खोला और वह अभी तक चल रहा है। उनकी पढ़ाई की शुरूआत तो उनके पति ने की, पर बाद में लखनऊ जाकर उन्होंने डिग्री की पढ़ाई पूरी की। उनके पति प्रकाश चंद ने उनका हर हाल में पूरा साथ दिया। अपने काम के लिए पति के जीवन में ही उन्होंने घर छोड़ा, ग्रहस्थी छोड़ी और सिंदूर तक हटा दिया। पति के जिंदा रहते हुए सफेद कपड़े अपना लिए और सुहाग के तमाम निशानों को छोड़कर समाज के मान्य संस्कारों का बहिष्कार किया।

बिहार में लड़कियों की तालीम की लड़ाई में एक बड़ा नाम रुकैया सेखावत हुसैन का भी है, जिनका जन्म पूर्वी बंगाल (आज का बांग्लादेश) के रंगपुर जिले में 1880 में हुआ था। शादी के बाद उन्हें भागलपुर आना पड़ा। 1890 के दशक में उन्होंने भागलपुर में लड़कियों का एक स्कूल खोला। पति खान बहादुर सेखावत हुसैन ने 10 हजार रुपए से उनकी मदद की। पारिवारिक झगड़े की वजह से इस स्कूल को कलकत्ते शिफ्ट करना पड़ा, जो आज भी चल रहा है। भारत के नारी मुक्ति आंदोलन में रुकैया बेगम का काम और नाम दोनों बहुत अहम् है। अंग्रेज़ी, बांग्ला और उर्दू की तालीम घर पर पूरी होने के बावजूद आज उनकी पहचान बांग्ला की बड़ी लेखिका, समाज सुधारक और चिंतक के रूप में है। महिला मुद्दों पर उनकी लेखनी क्रांतिकारी और बेमिसाल है। नारी शक्ति पर उन्होंने अंग्रेज़ी में एक साइंस फिक्शन भी लिखा है। वे पहली महिला हैं, जिनके नाम पर बांग्लादेश के ढाका विश्वविद्यालय में एक हॉल है, रंगपुर में एक यूनिवर्सिटी है। वे पहली ऐसी मुस्लिम महिला हैं। जिनकी मूर्ति बनी जो आज भी कायम है।

तालीम की लड़ाई और समाज बदलने के संघर्ष की हजार दास्तानें हैं। तामिलनाडु की एक देवदासी की बेटी मुथ्थू लक्ष्मी रेड्डी थी, जो पहली महिला डाक्टर बनीं और समाज बदलने में बड़ी भूमिका निभाई, इसमें इन लाखों बहादुर महिलाओं के संघर्ष की भी कहानी है, जिन्होंने देश की आजादी के आंदोलन में बहुत कठिन परिस्थिति में हिस्सा लिया। हजारों हजार ने जेल की सजा काटी पुलिस का दमन झेला, गोली और लाठी का सामना किया। बहुतों ने घर छोड़ा, कुछ ने पति का साथ भी छोड़ा। इनमें से कुछ ने समाजवादी आंदोलन को चुना और कुछ ने कम्युनिस्ट पार्टी से नाता जोड़ लिया।

महिला आंदोलन दो अलग-अलग धाराओं में बंट कर चलने लगा था। एक धारा अंग्रेजों की गुलामी से मुक्ति की लड़ाई की थी। दूसरी धारा जातिवादी व्यवस्था की सदियों पुरानी गुलामी से आजादी की लड़ाई की थी। महिलाओं और दलितों के लिए दोनों गुलामी से छुटकारा पाना जरूरी था, उन्हें डर था कि राज बदल जाने से सामाजिक गुलामी खत्म नहीं होगी और हुआ भी कुछ ऐसा ही।

महिलाओं के इन सारे संघर्ष और आंदोलन का सही आकनल कठिन है। यह कहना मुश्किल है कि आग कैसी सुलगी, कैसे चिंगारी ज्वाला बनी और इन्हें कहां से ऊर्जा मिली, यह कहा जा सकता है कि इन्हें ऊर्जा मिली गांधी की आंधी से, रूस की क्रांति से, अमरीका और यूरोप के नारीवादी आंदोलन से और तुर्की के कमालपासा के महिला-सामाजिक सुधार आंदोलन से, परन्तु यह अधूरा सत्य है। ऊर्जा की असल गंगोत्री इन महिलाओं का अपना सपना है, आत्म विश्वास है, लगन है, हिम्मत है, हौसला है और कठिन से कठिन समय में धैर्य के साथ चट्टान की तरह अडिग रहने का जज्बा है। इनमें से किसी को भारत रत्न नहीं मिला है। मगर ये सदा याद की जाएगी, इनमें से सभी रत्न हैं, अनमोल रत्न है।

अगोरा : एक अद्भुत महिला 'हिपेशिया' की कहानी

मनीष आजाद

कोपरनिकस और गैलिलिओ से लगभग 1000 साल पहले मिश्र [Egypt] के अलेक्जेंड्रिया [ALEXANDRIA] शहर में एक महिला हुआ करती थी। उसका कहना था कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है। और वह भी अंडाकार वृत्त में। बिना किसी आधुनिक उपकरण और दूरबीन की सहायता के उसने उस वक्त स्थापित टालेमी [Ptolemy] माडल को चुनौती दी।

इस अद्भुत महिला दार्शनिक, गणितज्ञ व वैज्ञानिक का नाम हिपेशिया [Hypatia] था।

2009 में आयी फिल्म अगोरा [Agora] हिपेशिया की कहानी के बहाने उस दौर में धर्म, विवेक, विज्ञान के खूनी टकराव को इस तरह प्रस्तुत करती है कि यह हमे आज के दौर पर भी सोचने को बाध्य करती है।

हिपेशिया अलेक्जेंड्रिया में अभिजात्य वर्ग के युवकों को पढ़ाती है। उसका पिता अलेक्जेंड्रिया लाइब्रेरी में ही काम करता हैं। उसकी भी रूचि वही है जो हिपेशिया की है। दोनों अलेक्जेंड्रिया लाइब्रेरी में दुनिया भर से एकत्र की गयी किताबों के बीच बैठ कर विज्ञान, गणित, दर्शन के गूढ़ सवालों पर चर्चा करते हैं। पिता-पुत्री के बीच का यह सम्बन्ध फिल्म में बहुत ही प्रभावी है।

हिपेशिया के महत्व को आप इस तथ्य से भी समझ सकते हैं कि अरस्तू का यह कथन उस वक्त के समाज का कॉमन सेंस था कि औरतों और गुलामों में दिमाग नहीं होता। सार्वजनिक जीवन में महिलायें न के बराबर थी।

बहरहाल, युवकों को पढ़ाते हुए ही एक छात्र युवक हिपेशिया की सुन्दरता पर मोहित होकर उससे प्रेम निवेदन कर बैठता है। दूसरे दिन हिपेशिया अपनी कक्षा में अपने पीरियड के खून से सने रूमाल को पूरी कक्षा के सामने उसे देते हुए कहती है- मै यह भी हूँ। संकेत साफ़ है कि किसी औरत से प्यार करना है तो उसे सम्पूर्णता में करो। महज बाहरी सौन्दर्य के आधार पर नही।

उसका अंगरक्षक उसका गुलाम भी मन ही मन उसे चाहता है, लेकिन गुलाम होने के कारण उसे व्यक्त नहीं कर पाता। उस गुलाम की भी अपनी समानांतर कहानी पूरी फिल्म में अंत तक चलती है।

यहीं पर यह बताना महत्वपूर्ण है कि हिपेशिया का किरदार जीने वाली रसेल वीज़ [Rachel Weisz] सच में बहुत खूबसूरत है। लेकिन उन्होंने अपने अभिनय में कहीं भी अपनी सुन्दरता का 'शोषण' नहीं किया है। अगर ऐसा होता तो उनका किरदार फीका पड़ सकता था। जैसा कि आम ऐतिहासिक फिल्मों में होता है।

जिस समय हिपेशिया अलेक्जेंड्रिया में पढ़ा रही है और अपने दार्शनिक, वैज्ञानिक जूनून का अनुसरण कर रही है, ठीक उसी समय रोम में ईसाइयत राज्य धर्म बन चुका है। यहूदियों और मूर्तिपूजकों [Pagan] को निशाना बनाया जा रहा है। इस समय अलेक्जेंड्रिया रोम का हिस्सा है। इसलिए यहाँ भी राज्य-धर्म बन चुके ईसाइयत का कट्टरपन बढ़ता जा रहा है। हिपेशिया के ही कुछ छात्र सत्ता की सीढ़ी में ऊपर जाने के लिए ईसाई बन चुके हैं। हिपेशिया के लिए स्वतंत्र माहौल में पढ़ाना अब मुश्किल होता जा रहा है। सच तो यह है कि अब हिपेशिया के लिए सार्वजनिक रूप से पहले की तरह बाहर निकलना भी दूभर होता जा रहा है।

उसके वे छात्र जो अब ईसाई बनकर सत्ता में ऊँची जगहों पर बैठे हैं वे भी दबाव बना रहे हैं कि हिपेशिया ईसाई धर्म ग्रहण कर ले। ऐसे ही एक दिलचस्प वार्तालाप में हिपेशिया कहती है कि मेरा धर्म दर्शन है और मै ईसाई कभी नहीं बनूंगी।

'पागान' [Pagan] धर्म से जुड़े विशालकाय 'देवताओं' को ईसाई कट्टरपंथी गिरा रहे है। यह दृश्य बरबस तालिबान द्वारा विशालकाय बौद्ध प्रतिमाओं को गिराए जाने की याद दिला देता है। तालिबानी कुछ नया नहीं कर रहे थे वे महज इतिहास को दोहरा रहे थे।

बाइबिल में जो 'ज्ञान' है, उसके अलावा सभी ज्ञान पर अब पाबंदी लगा दी जाती है। बाइबिल है तो फिर विश्व प्रसिद्ध अलेक्जेंड्रिया की लाइब्रेरी की क्या जरूरत है, जहाँ विश्व का विविध ज्ञान भरा हुआ है। लाइब्रेरी को जलाने के

लिए ईसाई कट्टरपंथियों की भीड़ निकल पड़ती है। जब यह बात हिपेशिया और उसके चंद उन छात्रों को पता चलती है जो अभी भी विवेक को धर्म से ऊपर रखते हैं और स्वतंत्र चिंतन में विश्वास रखते हैं, तो ये लोग लाइब्रेरी से जितनी जल्दी, जितनी महत्वपूर्ण किताबें [scrolls] निकाल सकते हैं, निकाल कर दूसरी जगह पंहुचा देते हैं। शायद यही बची किताबों ने बाद में दुनिया को रोशन करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यह फिल्म का बहुत ही सशक्त दृश्य है। एरियल शाट का इस्तेमाल करते हुए पूरी इमेज को उलट दिया गया है। सन्देश साफ़ है कि इसके बाद सब कुछ उलट गया। दुनिया अन्धकार युग में प्रवेश कर गयी। यहाँ निर्देशक इस विजुअल से यह साफ़ संकेत देता है कि जहाँ विज्ञान चीजों को पैरों के बल खड़ा करता है, वहीँ धर्म उसे सर के बल खड़ा कर देता है।

लेकिन क्लाइमेक्स अभी बाकी है, क्योंकि हिपेशिया अभी बाकी है। और जब तक हिपेशिया बाकी है, तब तक विवेक और विज्ञान बाकी है। घने अन्धकार में दीया बाकी है। बिना इस दीये को बुझाए अन्धकार की पूर्ण विजय कैसे हो सकती है।

हिपेशिया पर हबीब तनवीर का एक प्रसिद्ध नाटक है- एक औरत हिपेशिया भी थी। उसकी यह पंक्ति देखिये- हिपेशिया को रास्तों से घसीटते हुए गिरजा के अंदर ले गए। गिरजा खपरैलों से खुरच खुरच कर उसकी खाल नोची। फिर देखा कि उसकी आँखों में जान बाकी है, तो आँखें नोच लीं। फिर उसके जिस्म का एक-एक अंग काट कर टुकड़े-टुकड़े किया और बाहर ले जाकर उसे जला दिया।

फिल्म में हिपेशिया की मौत को थोड़ा दूसरे तरीके से दिखाया गया है। लेकिन बर्बरता वही है।

इस फिल्म के निर्देशक Alejandro Amenábar हैं जो खुद घोषित नास्तिक हैं। शायद इसीलिए वे धर्म की बर्बरता को इतने सशक्त तरीके से दिखा सके।

यह फिल्म बनाते हुए उनकी नज़र आज के समाज में बढ़ती धार्मिक कट्टरता और राज्य का बहुसंख्यक धर्म से अपने को जोड़ते चले जाने पर है। यानी राज्य के बर्बर बनते चले जाने पर है।

एक तरह से यह एतिहासिक सेटिंग की फिल्म होने के साथ ही आज के समाज की भी एक तीखी आलोचना है। आज धार्मिक राज्यों की भी वही स्थिति है, जो उस समय रोम और अलेक्जेंड्रिया की थी। चाहे वह इस्लामिक देश हों, बौद्ध धर्म वाला राज्य म्यामार हो या हिन्दू धर्म वाला [भले ही अघोषित तौर पर] भारत हो। हर जगह हिपेशिया को चुन चुन कर मारा जा रहा है। गौरी-लंकेश, पानसारे, दाभोलकर जैसे लोग हिपेशिया नहीं तो और कौन हैं?

यह फिल्म हमें सचेत करती है कि हमे एक बार फिर अन्धकार युग में जाना है या लाखों करोड़ो हिपेशिया बनकर इस अन्धकार को चीर देना है।

फैसला पूरी तरह हमारा है....

कुछ भी काम न आएगा...

जंतर-मंतर, पोथी-पतरा, कुछ भी काम न आएगा
गर्दन पर होगा जब खतरा, कुछ भी काम न आएगा।

अन्नत-मन्नत, दुआ-खैरियत, मांग-मांग थक जाओगे।
बलि का या बकरीद का बकरा, कुछ भी काम न आएगा।

जलढारी, गंगा-डुबकी, काँवर-वांवर, टीका, टोपी
काला मुर्गा, धागा-डोरा ; कुछ भी काम न आएगा।

दसाँ उंगलियों में धारण पत्थर भी धरे रह जाएँगे।
गिरेगा जब पूंजी का पटरा, कुछ भी काम न आएगा।

जहाँ पे पूरी गाड़ी ही हो बेपटरी होकर पलटी
नींबू-मिर्ची, जतरा-वतरा, कुछ भी काम न आएगा।

भुत-खेली का खेल सदन से नीचे तक जब जारी हो
झाड़-फूंक का लाख पैंतरा, कुछ भी काम न आएगा।

लातों के हैं भूत, बात से बात भला कब मानेंगे
मुद्रा-राक्षस ने है पकड़ा, कुछ भी काम न आएगा।

एक-दिनी हड़ताल, महज घेराबंदी से क्या होगा
चोट चाहिए अब तो तगड़ा, कुछ भी काम न आएगा।

-आदित्य कमल

अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवसः अतीत और वर्तमान

अमिता शीरीं

अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस का इतिहास उन मेहनतकश औरतों को समर्पित है जिन्होंने बहुत संघर्ष करके औरतों के लिए वे सारे अधिकार हासिल किये थे जिनके दम पर औरतें आज आज़ादी की चन्द सांसें ले रही हैं। यह भी सच है कि दुनिया की अधिकांश औरतें आज भी मेहनत कर रही हैं। यह भी सच है कि तमाम प्रतिक्रियावादी ताकतें आज फिर से औरतों को इतिहास के उसी अन्धेरे कोने में ढकेल देना चाहती हैं जिससे निकलने के लिए हमारी पुरखिन पूर्वजों ने अथक परिश्रम किया था।

आज से ठीक 113 साल पहले सन 1910 में पहली बार अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाने की घोषणा की गई थी। जर्मनी की विख्यात समाजवादी नेत्री क्लारा जेटकिन ने डेनमार्क के कोपेनहेगन में आयोजित मेहनतकश औरतों के अन्तरराष्ट्रीय समाजवादी सम्मेलन में यह प्रस्ताव रखा कि औरतों के अधिकारों के सम्मान और औरतों के लिए सार्वजनिक मताधिकार सुनिश्चित करने के लिए एक दिन मनाया जाए। 17 देशों से आई लगभग 100 प्रतिनिधियों ने ध्वनिमत से इस प्रस्ताव को पारित कर दिया। उस वक्त इसके लिए कोई एक निश्चित तिथि निर्धारित नहीं की गई।

लिये गए निर्णय के मुताबिक 19 मार्च 1911 में ऑस्ट्रिया, डेनमार्क, जर्मनी और स्विट्जरलैण्ड में पहली बार अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। तकरीबन 10 लाख लोगों ने विभिन्न रैलियों और प्रदर्शन में हिस्सेदारी की। वोट देने के अधिकार के अलावा प्रदर्शनकारियों की मांगें थीं कि उन्हें काम करने का अधिकार दिया जाए, व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाए तथा नौकरियों में औरतों और पुरुषों में व्याप्त ग़ैरबराबरी ख़त्म की जाए। 19 मार्च का दिन इसलिए तय किया गया क्योंकि इसी दिन 1848 में प्रशा के राजा ने एक सशस्त्र बग़ावत के बाद कई सुधारों का वादा किया जिसमें एक था औरतों के लिए वोट देने का अधिकार, जिसे अभी तक पूरा नहीं किया गया था।

1913 में इस तिथि को बदल कर 8 मार्च कर दिया गया। ऐसा इस दिन मेहनतकश वर्ग के इतिहास के दो महत्वपूर्ण दिनों की याद में किया गया। 8 मार्च 1857 में अमेरिका के न्यूयार्क शहर की कपड़ा फैक्ट्रियों और टेक्सटाइल फैक्ट्रियों में काम करने वाली महिला मजदूरों ने पहली बार एक प्रतिरोध प्रदर्शन किया था। यह प्रतिरोध महिला मजदूरों की अमानवीय कार्य दशा के विरोध में था। ये औरतें अत्यन्त अमानवीय दशा में 16-16 घण्टे बहुत कम वेतन पर काम करतीं। इनके बच्चे कई-कई दिन अपनी मांओं की शक्ल नहीं देख पाते थे। सुबह जब वे काम पर जा रहीं होतीं उस समय वे सोते रहते और जब वे रात में वापस काम से आतीं तो बच्चे फिर से सो जाते। इन महिला मजदूरों ने अपनी ख़राब दशा के खिलाफ़ पहली बार प्रतिरोध किया। उस वक्त भी प्रदर्शनकारियों पर पुलिस ने हमला किया और प्रदर्शनकारियों को तितरबितर कर दिया। इसके दो साल बाद पहली बार मार्च में ही महिला मजदूरों ने अपना पहला यूनियन बनाया।

पुनः 8 मार्च 1908 को न्यूयार्क शहर में 15000 औरतों ने मार्च निकाला। उनकी मांग थी कि काम के घण्टे कम किये जाएं, बेहतर वेतन दिया जाए, औरतों को भी वोट देने का अधिकार दिया जाए तथा बाल मजदूरी का खात्मा किया जाए। इस बार उनका नारा था 'रोटी और गुलाब'। इसमें रोटी प्रतीक थी आर्थिक सुरक्षा की तथा गुलाब प्रतीक था बेहतर जीवन स्थितियों का. इसी साल अमेरिका की सोशलिस्ट पार्टी ने हर साल फरवरी के अन्तिम रविवार को अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाने का फैसला किया।

28 फरवरी 1909 को समूचे अमेरिका में पहली बार अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। जल्दी ही यूरोप में भी फरवरी के अन्तिम रविवार को महिला दिवस मनाया जाने लगा। इसी पृष्ठभूमि में क्लारा जेटकिन

ने 1910 में अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाने का प्रस्ताव रखा.

इसी दौरान 25 मार्च 1911 में अमेरिका में एक त्रासदी हुई. ट्रायंगल अग्निकांड में 140 मजदूर लड़कियों की मौत हो गयी. इस घटना का अमेरिका में मजदूर कानूनों पर दूरगामी प्रभाव पड़ा. इसने अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस को और भी प्रेरित किया.

1913 में प्रथम विश्वयुद्ध की पूर्वसंध्या में रूसी औरतों ने अपना पहला अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाया. समूचे यूरोप में 8 मार्च और इसके आसपास अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस मनाया जाने लगा। इन सबमें सबसे प्रसिद्ध हुई सेंट पीटर्सबर्ग में 8 मार्च 1917 (रूसी कैलेण्डर के हिसाब से 24 फरवरी 1917) को रूसी औरतों के नेतृत्व में आयोजित 'रोटी और शान्ति' के लिये की गई स्ट्राइक. इसमें मेहनतकश वर्ग की दो प्रसिद्ध नेत्री क्लारा जेटकिन और एलेक्ज़ान्द्रा कोलोन्ताई ने हिस्सेदारी की. अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में आयोजित यह स्ट्राइक 8-12 मार्च के बीच पूरे शहर में फैल गई. बाद में यह प्रसिद्ध फरवरी क्रान्ति में तब्दील हो गई जिसने ज़ार के शासन को उखाड़ फेंका और पूरी दुनिया को झकझोर दिया.

समाजवादी रूस में 8 मार्च को राष्ट्रीय अवकाश के रूप में घोषित किया गया। और तबसे 8 मार्च मजदूर औरतों के संघर्ष का शानदार प्रतीक बन गया. समाजवादी रूस आगे चलकर औरतों के अधिकारों के लिए एक शानदार मिसाल बन गया और पूरी दुनिया में महिला आन्दोलन को प्रभावित किया। आगे चलकर 1949 में चीनी क्रान्ति ने औरतों की शानदार उपलब्धि पर मुहर लगाई। चीनी क्रान्ति ने स्थापित किया कि कैसे एक घोर सामन्ती, पिछड़े हुए और पितृसत्तात्मक समाज में भी औरतों के अधिकारों की जीत को स्थापित किया जा सकता है। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति ने औरतों की मुक्ति की लड़ाई को एक और मुकम्मल मुकाम प्रदान किया।

1960 और 1970 के दशक में पूंजीवादी देशों में एक सशक्त जनवादी आन्दोलन छिड़ गया। वहीं तीसरी दुनिया के देशों में राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलनों ने ज़ोर पकड़ लिया। साथ ही एक सशक्त नारी मुक्ति आन्दोलन भी सतह पर उभर कर आ गया। इन आन्दोलनों से साम्राज्यवादी सत्ताएं डोलने लगीं।

इसके परिणामस्वरूप साम्राज्यवाद ने तमाम सारे मुक्ति आन्दोलनों को कुचलने के कई सारे हथकण्डे अपनाने शुरू किये. इनमें से एक था इन आन्दोलनों को और इनके प्रतीकों को स्वयं में मिला लेने का। बड़ी मात्रा में आर्थिक अनुदान देकर कोरपोरेट और राज्य प्रायोजित एनजीओ के माध्यम से समाजवाद पर हमले शुरू किये गए. भ्रमित करने के लिए बूर्जुआ नारीवाद का एक विकल्प परोसा गया। समावेशीकरण के इसी क्रम में संयुक्त राष्ट्र संघ ने साल 1975 को अन्तरराष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप मनाने की घोषणा की और इसी साल 8 मार्च को अन्तरराष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाए जाने की घोषणा भी की गई।

धीरे-धीरे मेहनतकश औरतों के शानदार संघर्ष के प्रतीक 8 मार्च के इस दिन को तमाम सारी प्रतिगामी शक्तियां भी मनाने लगीं। आज इस दिन पर बाज़ार का कब्ज़ा हो गया है। यह दिन कभी लक्मे महिला दिवस, तो कभी पॉन्ड्स महिला दिवस के रूप में मनाया जाने लगा।

समाजवाद व कम्युनिस्ट आन्दोलन की तात्कालिक पराजय के कारण दुनिया भर में औरतों के संघर्षों को धक्का पहुंचा है। वैश्वीकरण की साम्राज्यवादी आंधी में औरतों को एक बार फिर शिकस्त देने की तैयारी चल रही है। कामगार लोगों के काम के घण्टों को बढ़ाया जा रहा है। औरतों को वापस किचेन में ढकेलने की कवायद चल रही है।

परन्तु तस्वीर का दूसरा पहलू यह भी है कि आज भी पूरी दुनिया में औरतें अपनी मुक्ति के लिए अलग-अलग तरीके से संघर्ष कर रही हैं। तो ज़रूरी है कि हम प्रतिक्रियावादी ताकतों के हाथों से अपने संघर्षों के प्रतीक इस दिन को छुड़ा लें और अपनी मेहनतकश औरतों के प्रतीक इस यादगार दिन को अपनी विरासत के रूप में घोषित करें। 8 मार्च, अन्तरराष्ट्रीय दिवस मेहनत करने वाली औरतों का एक प्रतीक यादगार दिन है और यही हमारी ताकत है और यह हमारी पहचान का दिन है!

(स्रोत : ''मुक्ति'' पत्रिका, अंक 4)

देशभक्त सूफी अम्बा प्रसाद

सुधीर विद्यार्थी

मुरादाबाद शहर के कायस्थान मुहल्ले में मैं उस घर के सामने खड़ा हूँ, जिसमें देशभक्त सूफी अम्बा प्रसाद की रिहाइश और उनका छापाखाना था। वह यही पैदा हुए थे। जन्म से ही उनका दाहिना हाथ कलाई से गायब था। बड़े होने पर जब वह क्रांतिकारी बने, तो मजाक में कहा करते थे कि मैं सत्तावनी संग्राम में लड़ा था, जिसमें दायां हाथ कट गया। उनका जन्म भी 'गदर' के ठीक एक साल बाद हुआ था। अम्बा प्रसाद बम या पिस्तौल चलाने वाले क्रांतिकारी नहीं थे। उनकी खूबी यह थी कि वह वकालत की उच्च शिक्षा प्राप्त कर पत्रकार के रूप में राजनीति में आए और लेखनी के बल पर देशभक्ति की भावनाओं का संचार करते रहे। वर्ष 1890 में मुरादाबाद से उन्होंने ''जामुल इलूम'' उर्दू साप्ताहिक का प्रकाशन किया। वह गुजरांवाला से प्रकाशित होने वाले ''इंडिया'' और पेशावर से छपने वाले ''इन्कलाब'' पत्रों में अपने लेख लिखा करते थे, और लाहौर में ''हिन्दुस्तान'' के सह-संपादक भी रहे।

नहीं पता कि ज़िंदगी और लोगों ने कब अम्बा प्रसाद को सूफी नाम सौंप दिया। पर आगे चलकर वह 'देशभक्त आका सूफी' कहे जाने लगे। हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक सूफी जी जब ब्रिटिश सरकार के लिए सिरदर्द बन गए, तो उन्हें कई बार लंबी-लंबी सजाएं देकर जेल में भी डाला गया। फरारी के दिनों में उनके छिपकर बच निकलने के किस्से भी बहुत मशहूर हैं। वह 'भारतमाता सोसाइटी' के प्रमुख सदस्य थे, जिनमें सरदार अजीत सिंह, लालचंद फलक, ईशरी प्रसाद और अमर नाथ पाराशर जैसे लोग थे।

सूफी जी शहीद भगत सिंह के चाचा क्रांतिकारी अजीत सिंह और लोकमान्य तिलक से बहुत प्रभावित थे। उन्होंने तिलक के भाषणों का अनुवाद भी पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया था। सूफी जी एक बार नेपाल में गिरफ्तार कर लाहौर लाए गए, लेकिन निर्दोष सिद्ध होने पर उन्हें छोड़ दिया गया। बाद में लाहौर में उनकी गतिविधियां निरंतर तेज होती चली गई। उन्होंने वहां से ''पेशवा'' नामक अखबार का प्रकाशन शुरू किया, तो सरकार बहुत चिंतित हुई। उन दिनों बंगाल के प्रसिद्ध क्रांतिकारी विपिन चंद्र पाल के जेल से छूटने पर सूफी जी ने उनके सम्मान में एक विशाल जलसे का आयोजन किया, जिसमें उन्होंने पंजाब की जनता से क्रांति के लिए उठ खड़े होने का आह्वान किया था। सरकार को भय पैदा हुआ कि कहीं बंगाल की तरह पंजाब में भी लोग विप्लव की राह पर न चल पड़ें। सरकार ने सूफी जी पर हाथ डालना तय किया, लेकिन वह इससे पहले ही लाला हरदयाल के साथ ईरान चले गए।

सूफी जी फारसी के अच्छे ज्ञाता थे। ईरान पहुंचकर भी अंग्रेजों के विरुद्ध उन्होंने अपना प्रचार जारी रखा। थोड़े समय में ही उन्होंने वहां भारत के पक्ष में वातावरण तैयार कर लिया और वह ईरान के लोकप्रिय व्यक्ति बन गए। वहां रहकर सूफी जी ने ''मोहिवाने वतन'' पुस्तक लिखी, जिसमें उन्होंने ईरान के क्रांतिकारियों की कहानी लिपिबद्ध की थी। ''आबे हयात'' नाम से फारसी अखबार भी उन्होंने निकाला। तब तक उनकी गिरफ्तारी का जाल बुना जा चुका था। पकड़े जाने पर उन्हें मौत की सजा तजवीज की गई। पर अगले दिन जब कोठरी खोली गई, तो सूफी जी मृत पाए गए। ईरान में शवयात्रा में अश्रुपुरित नयनों से हजारों लोग सम्मिलित हुए। सुना है कि शिराज में

उनकी कब्र आज भी मौजूद है, जहां प्रतिवर्ष मेला लगता है। उनकी समाधि पर लिखा हुआ है–''देशभक्त हिंदुस्तानी आका सूफी।''

सूफी जी की बलिदानी पत्रकारिता से प्रेरणा लेकर बाद में शांति नारायण भटनागर ने संयुक्त प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) में उर्दू साप्ताहिक ''स्वराज्य'' का प्रकाशन किया, जिसके एक के बाद एक आठ संपादक कालापानी गए और नौवें अमीरचंद बम्बवाल फरार घोषित हुए। इस पत्र के संपादक लद्धाराम ने एक समय सूफी जी की यादों का लिपिबद्ध किया था। लाला हरदयाल और सूफी जी में यह तय हुआ था कि हरदयाल दूर देशों में पश्चिम को जाएं और सूफी जी फारस पहुंचकर विदेशों में हिंदुस्तान की आजादी की भावना को लोकप्रिय बना सकें। हरदयाल यूरोप रवाना हो गए और सूफी जी अजीत सिंह के साथ फारस। भगत सिंह ने सूफी जी पर एक लेख भी लिखा। सूफी जी एक सेतु थे, जो 1857 के देशव्यापी प्रथम संग्राम और भगत सिंह के 'हिंदुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र संघ' के संघर्ष के मध्य हमें मजबूती से खड़े दिखाई देते हैं।

सूफी अम्बा प्रसाद शहादत के मार्ग पर चले गए, पर उनके साथी लद्धाराम जैसे क्रांतिकारी देश की स्वतंत्रता के बाद तक जीवित रहे। जिन लद्धाराम को उनके सक्रिय और जीवंत व्यक्तित्व के लिए कभी क्रांतिकारियों के बीच 'फील्ड मार्शल' कहा जाता था, उन्होंने बाद में अपना समय बहुत बदहाली में व्यतीत किया। यह जानकर पीड़ा से भर जाता हूं कि उनके बच्चों ने कासगंज में रिक्शे चलाए। पीतल नगरी कहे जाने वाले उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद शहर में 'सूफी अम्बा प्रसाद मार्ग' का कभी एक पत्थर लगा था, जिनका अब अता-पता नहीं। उनके नाम पर कोई द्वार या बुत भी यहां नहीं है। उनके घर के ठीक सामने चबूतरे पर नगर निगम ने बहुत बेतुके ढंग से एक नल लगवा दिया, जो संपूर्ण परिदृश्य को विरुपित करता है। मुख्य दरवाजे के ऊपर बना उनका धुंधला-सा चित्र उनकी उपेक्षा का ही प्रमाण है, जिसके चलते इस शहर के लोग उन्हें के लोग उन्हें विस्मृत करते रहे। मुरादाबाद के रेलवे स्टेशन पर भी सूफी जी का कोई चित्र नहीं है।

97608-75491

पाप और पाप मुक्ति

सुदेश

सारी जिंदगी पाप किया और कुछ हिस्सा ईश्वर को अर्पित कर दिया। सारी जिंदगी पाप किया औऱ उसकी पाठ पूजा करवा कर अपने गुनाहों को माफ करवा लिया सारी जिंदगी पाप की मैल चढ़ाते रहे, फिर पवित्र पानी से नहा कर पापमुक्त हो गए

सारी जिंदगी यहां दूसरे फिरके के इंसानों से नफरत करते रहे और शैतान को पत्थर मार कर गुनाह माफ करवा लिए। जानते हैं कि पाप करना गुनाह है फिर भी पाप करते रहे।

क्योंकि ज़्यादातर सभी धर्मों में किये हुए पापों का इलाज कुछ हिस्सा देकर, पाठ पूजा करवा कर , कहीं माथा टेक कर , कहीं चादर चढ़ा कर , कहीं नहा धोकर पाप मुक्त हो जाने का प्रावधान जो है।

सोच रहा था कि अगर पाप ही न किये जाते तो ऐसा सब कुछ करने की जरूरत ही न पड़ती , न गुनाह न पाप करते ,तो ये सब न करना पड़ता ।

गुनाह मुक्त हो जाने के लिए महंगी धार्मिक यात्रायें करता है, रिश्वत चढ़ाता है जिसे वो दान कह देता है , भोजन कराता है जिसे वो भोग कह देता है , उसे नए कपड़े चढ़ाता है जिसे लोग चादर कह देते हैं।

एक पहुंच और पैसे वाले व्यक्ति को अगर पता हो कि उसके द्वारा तोड़े गए ट्रैफिक नियम से वो जुर्माना देकर या पहुँच का इस्तेमाल कर के वो सज़ा से छूट सकता है तो चांस हैं कि वो लापरवाही से गाड़ी चलाकर लोगों को मारता ही फिरेगा , क्योंकि उसे पता है कि उसके द्वारा किये गए गुनाहों से वो कैसे बच सकता है ।

इसलिए आज इंसान यही सोच कर ,जानबूझ कर, 'पाप' किये जा रहा है गुनाह किये जा रहा है कि जितने मर्जी 'पाप' कर लो , बचाव तो जुर्माना देकर, पूजा पाठ उपाय करके , धार्मिक यात्राएं करके या फिर एजेंट्स के थ्रू हो ही जाना है ।

मुझे लगता है कि वास्तव में इंसान ऐसे पाप मुक्त होने के तरीके ईजाद कर के खुद को भी धोखा दे रहा है

लघुकथा

जूतों का भार

कृष्ण कायत

''मैडम जी, फैमली आइडी चाहिए जी....''

सातवीं कक्षा की नेहा के साथ आए उसके पिता ने मैडम सुनीता के पास आकर गुहार लगाई ।

''क्यों ? क्या करना है उसका...'', सुनीता मैडम ने प्रश्न दागा।

''जी ...वो राशन डिपो वाले ने राशन देने से मना कर दिया । कहता है कि पहले स्कूल से अपनी फैमिली आइडी लेकर आओ'', नेहा के पिता ने व्यथित स्वर में कहा।

''अच्छा अब खुद को काम पड़ा तो स्कूल की याद आ गई ... और हम जो रोज फोन कर - कर के पागल हो गए कि अपनी बच्ची को आनलाईन भेजा गया गृह कार्य करवा कर मोबाइल पर भेजो । उसकी तो सुनवाई की नहीं आपने....?'', सुनीता मैडम बिफर पड़ीं ।

''जी.. वो हमारे फोन का नेट पैक खत्म हो गया था इसलिए..........'' नेहा के पिता ने मजबूरी बतानी चाही लेकिन सुनीता मैडम उनकी बात बीच में ही काटकर गुस्से से चिल्ला उठी ।

''जाओ , पहले जाकर फोन रिचार्ज करवा कर लाओ और आनलाईन फीडबैक फार्म भरो, फिर मिलेगी आईडी....।''

थोड़ी देर बाद बाप बेटी फिर से स्कूल में आ गए और सुनीता मैडम को फोन पकड़ा कर बोले ... ''जी, फोन रिचार्ज करवा लिया है आप बता दो अब कि आनलाईन क्या करना है इसमें ?''

सुनीता मैडम का उनसे फोन पकड़ते हुए ध्यान गया कि इतनी ठंड में भी नेहा नंगे पांव स्कूल आई थी जबकि आज तो जुराब-जूतों में भी ठंड महसूस हो रही है । इसलिए फिर से गुस्से में नेहा से पूछा ''इतनी ठंड में भी बिना जूते- चप्पल के घूम रही हो...अक्ल नाम की चीज है या नहीं ..?''

''जी .... जूते हैं नहीं और कई दिन हुए चप्पलें टूट गई हैं ...'' नेहा ने डरते हुए जवाब दिया ।

नेहा के पिता ने सफाई देने के लहजे में बोला, " जी... अभी थोड़ी तंगी चल रही है इसलिए.....बस दो-चार दिहाड़ी लगातार लग जाएं तो दिलवा देंगे चप्पल इसे ..... अभी तो ये फोन भी दुकानदार से मिन्नतें करके उधार में रिचार्ज करवाया है।''

तभी मैडम सुनीता को लगा कि उसके हाथ में मोबाइल नहीं जूतों समेत नेहा का भार है और वह निश्शब्द हो गई।

9896105643

संयोजकः हरियाणा प्रादेशिक लघुकथा मंच, डबवाली।

पृष्ठ 17 का शेष

लिए उसने आश्रम में एक तहखाना बनाया हुआ था, जिसमें एक बेड लगा रखा था, उसे वह महिलाओं से दुष्कर्म करने में उपयोग करता था।

मामला ऐसे आया सामने

बालक नाथ आश्रम के संचालक जलेबी बाबा का एक अनुयायी एक दिन उसके पास आया और कहने लगा कि बाबा जी मेरा मोबाइल खराब हो गया है। आपके पास कई मोबाइल हैं। एक मोबाइल कुछ दिन के लिये मुझे दे दो। अनुयायी युवक की मांग पर जलेबी बाबा ने अपना एक मोबाइल उसे सौंप दिया। युवक उस मोबाइल को घर ले गया और उसकी डलीट मूवीज को खोला तो उसमें से बड़ी संख्या में बाबा की महिलाओं के साथ अश्लील वीडियो मिली। युवक ने इनमें से कुछ वीडियो सोशल मीडिया पर वायरल कर दी। वायरल वीडियो से टोहाना शहर में हाहाकार मच गई। बात पुलिस के संज्ञान में आई तो पुलिस ने जलेबी बाबा के आश्रम में छापा मार कर काफी अश्लील सीडी बरामद कर ली। मामले का पर्दाफाश होने पर आधा दर्जन महिलाओं ने बाबा पर नशीला पदार्थ पिला कर यौन शोषण करने व बाद में ब्लैकमेल करने के सिटी थाना टोहाना में बयान दर्ज करवाए जिसके आधार पर सिटी थाना प्रभारी प्रदीप कुमार की शिकायत पर मामला दर्ज किया गया था। 94161-32844

मकान मालकिन की छोटी लड़की ने एक महाशय से पूछा

बर्तोलत ब्रेख्त

अगर शार्क आदमी होते तो क्या छोटी मछलियों के साथ उनका व्यवहार सभ्य-शालीन होता?

उन्होंने कहा– निश्चय ही, अगर शार्क आदमी होते तो वे छोटी मछलियों के लिए समुद्र में विशाल बक्से बनवाते, जिसके भीतर हर तरह के भोजन होते, तरकारी और मांस दोनों ही।

वे इस बात का ध्यान रखते कि बक्सों में साफ पानी रहे और आम तौर पर वे हर तरह की स्वच्छता का इंतजाम करते।

उदाहरण के लिए अगर किसी छोटी मछली का पंख चोटिल हो जाता तो तुरन्त उसकी पट्टी की जाती, ताकि वह मर न जाये और समय से पहले वह शार्क के लिए गायब न हो जाये।

छोटी मछलियाँ उदास न हों इसलिए समय-समय पर विराट जल महोत्सव होता, क्योंकि प्रसन्नचित्त मछलियाँ उदास मछलियों से ज्यादा स्वादिष्ट होती हैं।

निश्चय ही, बड़े बक्सों में स्कूल भी होते। उन स्कूलों में छोटी मछलियाँ यह सीखतीं कि शार्क के जबड़ों में कैसे तैरा जाता है।

भूगोल जानना भी जरूरी होता, ताकि उदहारण के लिए, वे उन बड़े शार्कों को खोज सकें जो किसी जगह सुस्त पड़े हों।

छोटी मछलियों के लिए प्रमुख विषय निश्चय ही नैतिक शिक्षा होता।

उनको सिखाया जाता कि दुनिया में यह सबसे अच्छी और बेहद सुन्दर बात होगी अगर कोई छोटी मछली ख़ुशी-ख़ुशी अपने को कुर्बान करे और यह कि उन सबको शार्कों पर भरोसा रखना होगा, खासकर तब जब वे कहें कि वे उनके लिए सुन्दर भविष्य मुहैया कर रहे हैं।

छोटी मछलियों को पढ़ाया जाता कि यह भविष्य तभी सुनिश्चित होगा जब वे आज्ञाकारी बनना सीख जायें।

छोटी मछलियों को सभी भौतिकवादी और मार्क्सवादी रुझानों से सावधान रहना होता और अगर उनमें से कोई 'दगाबाजी' करके इन बातों में दिलचस्पी लेती तो तुरन्त इसकी सूचना शार्कों को देनी होती।

अगर शार्क आदमी होते तो निश्चय ही वे एक दूसरे के खिलाफ युद्ध छेड़ते, ताकि दूसरे मछली बक्सों और दूसरी छोटी मछलियों को जीत सकें।

युद्ध उनकी अपनी छोटी मछलियों द्वारा लड़ा जाता। वे अपनी छोटी मछलियों को सिखाते कि उनमें और दूसरे शार्कों की छोटी मछलियों के बीच भरी अन्तर है।

वे घोषणा करते कि छोटी मछली चुप रहने के लिए सुविख्यात हैं, लेकिन वे बिलकुल अलग भाषाओं में चुप हैं और इसलिए एक दूसरे को समझ पाना उनके लिए असंभव होता है।

हर छोटी मछली जो युद्ध में एक जोड़ी छोटी मछली, यानी अपने दुश्मन की हत्या करती उसे समुद्री शैवाल टाँका हुआ तमगा मिलता और उसको नायक की उपाधि से विभूषित किया जाता।

अगर शार्क आदमी होते तो निश्चय ही कला भी होती।

सुन्दर-सुन्दर तस्वीरें होतीं जिनमें शार्क की दाँतों को शानदार रंगों में चित्रित किया गया होता और उनके जबड़ों को निर्मल विहार उपवन के रूप में दर्शाया जाता जिसमें कोई भी शान से विचरण कर पाता।

समुद्र की तलहटी में थियेटर यह दिखाता कि कैसे बहादुर छोटी मछलियाँ उत्साहपूर्वक शार्क के जबड़े में तैर रही हैं और संगीत इतना सुन्दर होता कि वह उनके सुर में सुर मिलाता रहता, आर्केस्ट्रा उनको प्रोत्साहित करता और अत्यंत मनोहर विचारों से श्लथ, छोटी मछलियाँ स्वप्निल बहाव के साथ शार्क के जबड़े में समातीं।

एक धर्म भी होता अगर शार्क आदमी होते।

वह उपदेश देता कि छोटी मछली वास्तव में केवल शार्कों के उदर में ही समुचित रूप से जीना शुरू करती हैं।

इसके आलावा, अगर शार्क आदमी होते तो सभी छोटी मछलियों की बराबरी का दर्जा ख़त्म हो जाता, जैसा कि आजकल है।

कुछ को महत्वपूर्ण पद दिये जाते और उनको बाकी सब से ऊँचा स्थान दिया जाता। जो थोड़ी बड़ी होतीं उन्हें अपने से छोटी मछलियों को खाने की भी इजाजत होती।

शार्कों की इस बात पर पूरी सहमति होती क्योंकि उनको भी तो समय-समय पर थोडा बड़ा निवाला खाने को मिलता।

और हाँ, जो छोटी मछलियाँ थोड़े बड़े आकार की होतीं वे अपने पदों पर काबिज होकर बाकी छोटी मछलियों के बीच व्यवस्था कायम करतीं।

वे शिक्षक, अफसर, बक्सा निर्माण इंजीनियर इत्यादि हो जातीं।

थोड़े शब्दों में, अगर शार्क आदमी होते तो पहली बार वे समुद्र के भीतर संस्कृति ले आते।

अनुवाद–दिगंबर

रागनी

खुद आपणी सम्भाल करांगे,
मिल के सब रखवाल करांगे,
इन सारी पड़ताल करांगे,
या किसनै लूट मचा रक्खी,
हे रै रै रै रै..............।

सै अफरा तफरी का दौर,
सत्ताधारी हुए सब चोर,
या जोर तै शिखर चढ़ी महंगाई,
बेशर्मी चौगरदै छाई,
किरसाणां की होवै तबाही,
साजिश खूब रचा राक्खी, हे रै रै रै रै.........।

वादा करया था सबके साथ का,
यूज करवा कर धरम-जात का,
इस बात का बेरा लाणा होगा,
चेहरा असल दिखाणा होगा,
तो सबके स्याहमी, ल्याणा होगा,
या जिसने गरल विश्व राक्खी, हे रै रै रै रै..........।

युवा फिरते बेरोजगार,
भीड़ में शामिल करे बेकार,
या मार कसूत्ती निजीकरण की,
होड़ लाग री गोझा भरण की,
लोड़ सै उसतै जंग करण की,
या जिसने भीड़ नचा राक्खी, हे रै रै रै रै......।

राजनीति म्हं जी धरम फसावै,
झूठ बोल मुद्दे उलझावै,
वो लावै आग फलावै दंगा,
माणस तै कहैं-मजहब चंगा,
''खड़तल'' उनै करांगे नंगा,
या जिसने झूठ जचा राक्खी, हे रै रै रै रै.....।

मंगत राम शास्त्री ''खड़तल''

हरियाणवी ग़ज़ल
थ्हारी कचैहड़ी में पेश याह्

उसकै घरां अंधेरा से डूब।
मुसकल बीच कमेरा सै इब।

न्याँ-नीति की बात रह् यी ना,
गूँड्याँ के सिर सेह्रा सै इब।

एक जणे के चमक चाँदणी,
सत्तर घरें अंधेरा से इब।

जिन्दगी रह सैं लाठ्ठ-दबाऊ,
डाम्माडोल बसेरा सै इब।

बिना सफारश काम बणैं ना,
बालक तक नैं बेरा सै इब।

बणजी कहै मुल्क म्हं सब कुछ,
मेरा, मेरा, मेरा सै इब।

करतब देख न्यूँ लाग्गैं सै,
मुखिया जणो लुटेरा सै इब।

पढ़े-लिखे लोगों का 'केसर',
अठ्ठकस के घर डेरा सै इब।

-कर्म चन्द केसर

सामाजिक विज्ञान का महत्व

डा. अमित नीरव

दो दिन पहले जे एन यू पर लिखी जे सुशील की किताब ''जे एन यू अनंत, जे एन यू कथा अनंता'' पढ़कर खत्म की। सच पूछिए तो जिस तरह के विश्वविद्यालय की कल्पना मेरे पास थी जे एन यू ठीक वैसा ही लगा। अच्छी यूनिवर्सिटी में न पढ़ पाने का पुराना मलाल गहरा गया।

किताब में लेखक लिखते हैं कि साइंस के विभागों के स्टूडेंट क्लास रूम और लैब के अतिरिक्त और किसी तरह की गतिविधियों में हिस्सा नहीं लेते हैं। ज्यादातर साइंस के स्टूडेंट दक्षिणपंथी होते हैं। इस बात ने एक बहुत पुरानी हायपोथिसिस की तस्दीक की।

जब मैं स्कूल में थी उस वक्त नौवीं क्लास से ही विषय का चुनाव करना होता था। कजिन को बायोलॉजी में डिसेक्शन के लिए मछली लाते देखा था तो तय कर लिया था कि बायोलॉजी तो हरगिज नहीं ली जाएगी। गणित में बहुत बचपन से ही डब्बा गोल था। तो गणित भी नहीं पढ़ सकती।

होम साइंस उस वक्त लड़कियों के अच्छे नंबर से पास होने की गारंटी तो था लेकिन रोजगार की दृष्टि से उसमें कोई स्कोप नहीं था। दूसरे, किचन में काम करना न तो पसंद था और न ही आता था, तो होम साइंस भी नहीं लिया जाना था। बस दो विषय बचे थे- कॉमर्स और आर्ट्स।

जाना तब ये भी था कि गणित से निजात कॉमर्स लेने में भी नहीं है। ताऊ जी के अपने परसेप्शंस थे। उनकी मेरी जिंदगी और मेरी सोच-समझ में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका थी। उस वक्त वे कहा करते थे कि साइंस और कॉमर्स के स्टूडेंट्स का जनरल नॉलेज एकदम पुअर हुआ करता है। तो अब आर्ट्स के अलावा और कोई विकल्प भी नहीं है।

आर्ट्स लिया, बी ए और फिर एम ए किया। चुनाव तो खैर अपनी सुविधा से किया था, लेकिन ताऊजी की बात जहन में दर्ज कर ली थी। बीच-बीच में कॉमर्स और साइंस पढ़ने वाले साथियों को ऑब्जर्व भी करती रही। पाया कि ताऊजी जो कहते रहे हैं, वो गलत भी नहीं है, लेकिन फिर लगा कि यह भी एक किस्म का सामान्यीकरण है।

एक विचार यह भी आया कि दुनिया उतनी ही नहीं है, जितनी मेरे इर्दगिर्द है। मेरे दायरे से बाहर की दुनिया बहुत विस्तृत है। हो सकता है उस दुनिया में ये बात सच नहीं हो। लगातार ऑब्जर्वेशन से कुछ चीजें स्पष्ट हुईं, ऐसा नहीं है कि सोशल साइंस पढ़ने वाले सारे स्टूडेंट्स की समझ अच्छी है, फिर भी दूसरे विषयों के औसत स्टूडेंट्स से वे बेहतर ही मिले।

जब हमारे शहर में पहला मॉल खुला तो अखबार में लगातार उस पर स्टोरीज आने लगी थी। अखबार का भी पेट भरता और मॉल का विज्ञापन भी होता। आखिर तो तब तक मॉल के बारे में हम लोगों में जानकारी भी तो कितनी कम थी। उस वक्त तक मॉल में ज्यादातर उच्च मध्यम और उच्च वर्ग ही जाया करता था।

उन्हीं दिनों प्रदेश में चुनाव थे तो अखबार के संवाददाता ने मॉल में आने वाले यूथ पर एक स्टोरी की थी। उसने मॉल में आने वाले प्रोफेशनल स्टडीज के स्टूडेंट्स से प्रदेश और देश की राजनीति पर सवाल किए। उनके दिए जवाबों ने न सिर्फ चौंकाया बल्कि डर और निराशा से भर दिया।

इंजीनियरिंग, मैनेजमेंट और आईटी की दुनिया में बेहतर करने वाले युवा प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति, मुख्यमंत्री और राज्यपाल की जिम्मेदारियाँ और कार्यक्षेत्र के बारे में कुछ नहीं जानते हैं। ये उस वक्त की बात है, जब फेसबुक तो आ चुका था, मगर व्हाट्स एप अभी आना था।

कई साल मैं इस सवाल से जूझती रही हूँ कि आखिर स्कूलों में शुरुआती सालों में सोशल साइंस के विषय ही क्यों पढ़ाए जाते हैं? उसमें भी इतिहास और नागरिक शास्त्र पर इतना जोर क्यों हुआ करता है? शुरू में लगता था कि शायद ये विषय बच्चों को सरलता से समझाए जा सकते हैं, इसलिए सिलेबस इस तरह से बनाया गया है।

सिविल सर्विसेज की तैयारी के दौरान जाना कि जनरल स्टडीज के सिलेबस का पचहत्तर प्रतिशत हिस्सा ह्युमैनिटीज से और पच्चीस प्रतिशत हिस्सा प्योर साइंस का हुआ करता है। उसमें भी भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास और भारतीय संविधान एक बड़ा हिस्सा कवर करते हैं।

तब पहली बार यह बात ठीक-ठीक तरह से समझ

आई कि दरअसल इंसान के दुख, सुख, परेशानी, तकलीफ प्राकृतिक उतने नहीं हैं, जितने व्यवस्थागत हैं। इन्हीं व्यवस्थागत परेशानियों को समझने के बाद ही हम इंसान की गरिमा और बेहतरी के लिए रास्ता निकाल पाएँगे।

अपनी पढ़ाई के दिनों से ही प्रोफेशनल एज्यूकेशन का डंका बजने लगा था। बेरोजगारी के कई सालों तक प्रोफेशनली एजूकेटेड न होने का मलाल सताता रहा था। इन कुछ सालों से जबसे हर जगह सोशल साइंस में लगातार कम होते रोजगार और इसकी वजह से इस स्ट्रीम से दूर जाते स्टूडेंट्स देखती हूँ तो खौफ होने लगता है।

इन कुछ सालों में यह समझ पुख्ता हुई है कि अमूमन साइंस, टेक्नोलॉजी, कॉमर्स, मैनेजमेंट जैसे विषय पढ़ने वाले स्टूडेंट्स दरअसल समाज और उसकी समस्याओं से पूरी तरह से कटे रहते हैं। मोटे तौर पर यह प्रिविलेज्ड तबका हुआ करता है। जिसकी जिंदगी में बस रोजगार ही एक समस्या होती है।

रोजगार मिलते ही वह मस्त हो जाता है। पिछले सालों में अपने इर्दगिर्द के बच्चों को देखते हुए भविष्य के समाज का भयावह चित्र उभरने लगा है। समझा कि साहित्य, राजनीति, समाज, संस्कृति और इतिहास से दूर होते युवा बहुत जल्दी निर्देश पर काम करने वाले रोबोट बनाए जा सकते हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था इस तरह के युवाओं से न सिर्फ बची रह सकती है बल्कि फल-फूल सकती है। अब पैसा उनकी समस्या नहीं रही है। उच्च पदों पर नियुक्त लोगों को लाखों के पैकेज देकर सैटल्ड किया जाता है और बाकियों को बेहतर काम करके ऊपर पहुँचने के सपने दिखाए जाते हैं।

इससे एक किस्म के आत्म-केन्द्रित समाज का निर्माण हो रहा है। जिसमें पैकेज, वीकएंड एंजॉयमेंट्स, पार्टियाँ, वेकेशंस, अपरेजल, प्रमोशन, परफॉर्मेंस, टारगेट, टारगेट अचीवर, क्लाइंट्स, मैनेजमेंट, टाइम मैनेजमेंट, वर्क-लाइफ बेलैंस, आदि से आगे और कुछ शामिल नहीं होता है।

मुझसे शुरू हुई दुनिया मुझ पर ही खत्म हो जाती है। मेरे ही दुख हैं और मेरे ही सुख हैं। मेरे अलावा दुनिया में और कोई नहीं है, यदि हैं तो न तो मुझे उनके सुख-दुख से कोई लेना देना है, न ही उसके अभाव से मेरा कोई लेना देना है।

बहुत प्लांड तरीके से सोशल साइंस को हमारी समझ के दायरे से अलग किया जा रहा है। शिक्षा को सिर्फ उत्पादकता से जोड़ दिया गया है। मजे की बात यह है कि यह आर्थिक और राजनीतिक दोनों तरह की व्यवस्थाओं के लिए मुफीद है, मगर इससे समाज बीमार हो रहा है।

सामाजिक विज्ञान के प्रति उपेक्षा भाव समाज को लगातार क्षरित कर रहा है। समाज, राजनीति, भूगोल, मनोविज्ञान, साहित्य, इतिहास, संस्कृति, कला आदि को जाने समझे बिना हम इंसान नहीं हो सकते हैं। इंसान होकर बेहतर के लिए संघर्ष करेंगे।

इसके उलट इंसान से अपदस्थ होते ही हम व्यवस्था के लिए सबसे ज्यादा उपयोगी होंगे। हमारी सभ्यता के सामने संकट बहुत गहरे हैं। यदि हमने आज अपने इंसान होने के लिए संघर्ष नहीं किए तो हमारी आने वाली पीढ़ी, संवेदनाशून्य रोबोट हो जाएगी। हम क्या चाहते हैं, इसे अभी तय करना होगा।

समाज बचाना है तो सामाजिक विज्ञानों, साहित्य और कला को बचाइए।

मुक्ति का मार्ग

-डॉ. भीमराव अम्बेदकर

''तुम्हारी मुक्ति का मार्ग धर्मशास्त्र व मन्दिर नहीं है बल्कि तुम्हारा **उद्धार उच्च शिक्षा, व्यवसायी** बनाने वाले रोजगार तथा उच्च आचरण व नैतिकता में निहित है। तीर्थयात्रा, व्रत, पूजा-पाठ व कर्मकांडों में कीमती समय बर्बाद मत करो। धर्मग्रन्थों का पाठ करने, यज्ञों में आहुति देने व मन्दिरों में माथा टेकने से तुम्हारी दासता दूर नहीं होगी। तुम्हारे गले में पड़ी तुलसी की माला गरीबी से मुक्ति नहीं दिलायेगी।

काल्पनिक देवी-देवताओं की मूर्तियों के आगे नाक रगड़ने से तुम्हारी भुखमरी, दरिद्रता व गुलामी दूर नहीं होगी।

अपने पुरखों की तरह तुम भी चिथड़े मत लपेटो, दड़बे जैसे घरों में मत रहो और इलाज के अभाव में तड़प-तड़प कर जान मत गंवाओ। भाग्य व ईश्वर के भरोसे मत रहो, तुम्हें अपना उद्धार खुद ही करना है। धर्म मनुष्य के लिए है, मनुष्य धर्म के लिए नहीं और जो धर्म तुम्हें इन्सान नहीं समझता वह धर्म नहीं, अधर्म का बोझ है। जहाँ ऊँच-नीच की व्यवस्था है। वह धर्म नहीं, गुलाम बनाये रखने की साजिश है।

त्यौहारों का जन्म

- कात्यायनी

त्यौहारों का जन्म कृषि-आधारित पुरातन समाजों में फसलों की बुवाई और कटाई के मौसमों पर आधारित था। ये सामूहिक जन-उल्लास के संस्थाबद्ध रूप थे। जादुई विश्वदृष्टिकोण और प्राकृतिक शक्तियों के अभ्यर्थना के आदिम काल में इन त्यौहारों के साथ टोटकों की कुछ सामूहिक क्रियाएँ जुड़ी हुई थीं। फिर संस्थाबद्ध धर्मों ने शासकवर्गों के हितों के अनुरूप इन त्यौहारों का पुनःसंस्कार और पुनर्गठन किया और इनके साथ तरह-तरह की धार्मिक मिथकीय कथाएँ और अनुष्ठान जोड़ दिये गये। इसके बावजूद प्राक पूँजीवादी समाजों में आम उत्पादक जन समुदाय इन त्यौहारी उत्सवों को काफी हद तक अपने ढंग से मनाता रहा। त्यौहार आम उत्पीड़ितों के लिए काफी हद तक सामूहिकता का जश्न बने रहे। जिन्दगी भर उत्पीड़न का बोझ ढोने वाले लोग कम से कम एक दिन कुछ खुश हो लेते थे, कुछ गा-बजा और नाच लेते थे।

लेकिन पूँजी की 'चुडैल' ने आम लोगों के जीवन का यह रस भी चूस लिया। जीवन में हर चीज माल में तब्दील हो गयी और सबकुछ बाजार के मातहत हो गया। होली-दिवाली-दशहरा-सभी त्यौहार समाज में अमीरों के लिए 'स्टेटस सिंबल' बनकर रह गये हैं। जिसकी गाँठ में जितना पैसा, उसका त्यौहार उतना ही रौशन और रंगीन। आम लोगों के लिए तो त्यौहार बस भीषण तनाव ही लेकर आते हैं। थोड़े दिये जला लेने और पटाखे फोड़ लेने या थोड़ा अबीर-गुलाल लगा लेने और गुझिया खा लेने की बच्चों की चाहत पूरा करने में और थोड़ी बहुत सामाजिक औपचारिकताएँ पूरी करने के दबाव में गरीब मेहनतकशों और निम्न मध्यवर्ग के लोगों का सारा कसबल निकल जाता है। जो अमीर लोग त्यौहार जोर-शोर से मनाते हैं, उन्हें भी सारी खुशी वास्तव में अपनी दौलत की नंगी नुमाइश से ही मिलती है। पूँजीवादी समाज में श्रम-विभाजन से पैदा होने वाले सर्वग्रासी अलगाव (एलियनेशन) ने सामूहिकता की भावना को विघटित करके उत्सवों के प्राणरस को ही सोख लिया है। अलगाव के शिकार केवल उत्पादक मेहनतकश ही नहीं है, बल्कि उससे भी अधिक परजीवी समृद्धशाली तबके हैं। जो पूँजी को लगाम लगाकर सवारी करना चाहते हैं, उल्टे पूँजी उन्ही की पीठ पर सवार होकर उनकी सवारी करने लगती है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में खुशी मनुष्य को केवल सामूहिक रूप से मिलती है। सामूहिकता से वंचित दौलतमंद परजीवी एक शापित मनुष्य होता है जो केवल अपनी दौलत-हैसियत के प्रदर्शन से खुशी पाने की मिथ्याभासी चेतना का शिकार होता है या फिर एक ऐसा ''सभ्य पशु'' होता है जो तरह-तरह से खा-पीकर, तरह-तरह से यौन क्षुधा को तुष्ट करके और रुग्ण फन्तासियों में जीकर खुश होने की आदत डाल लेता है।

आम जनता के लिए त्यौहारों की अप्रासंगिकता का एक और ऐतिहासिक कारण है। ज्यादातर त्यौहार कृषि-उत्पादन की प्रधानता के युग के त्यौहार हैं। कारख़ाना-उत्पादन की प्रधानता और कृषि-उत्पादन के मशीनीकरण तथा फसलों के बदलते मौसम, पैटर्न और व्यवसायीकरण के युग में इन त्यौहारों के आनन्द का मूल स्रोत सूख चुका है। पश्चिमी देशों में 'पुनर्जागरण-प्रबोधन-जनवादी क्रान्ति' की प्रक्रिया में जब पूँजीवाद आया तो उसने सामूहिक नृत्य, सामूहिक संगीत (ऑपेरा, बैले, सिम्फनी संगीत के कंसर्ट आदि), आधुनिक नाटक आदि के साथ सामूहिक जश्न के तमाम रूप विकसित किये तथा कुछ प्राचीन एवं मध्ययुगीन त्यौहारों का भी पुनः संस्कार करके उनके धार्मिक अनुष्ठान वाले पक्ष को गौण बना दिया और सामूहिक उत्सव के पहलू को प्रधान बना दिया। हालाँकि उन पश्चिमी समाजों में भी बढ़ती पूँजीवादी रुग्णताओं

ने सामूहिकता के उत्सवों को मरणासन्न बना दिया है। फिर भी उन समाजों के सामाजिक ताने-बाने में इतने जनवादी मूल्य रचे-बचे हैं कि स्त्री-पुरूष खास मौकों पर फिर भी सड़कों पर निकलकर गा-बजा-नाच लेते हैं, खाते और पीते हैं।

भारत जैसे उत्तर औपनिवेशिक समाज में पूँजीवादी भी जनवादी क्रान्ति के रास्ते नहीं, बल्कि एक क्रमिक प्रक्रिया से आया। इन जन्मना रुगण-विकलांग पूँजीवादी ने जनता को सामूहिकता के उत्सव को कोई भी नया रूप नहीं दिया ---न तो सामूहिक जीवन में, न ही कला में। पुराने मध्ययुगीन धार्मिक आयोजनों को ही थोड़ा संशोधित-परिष्कृत करके अपना लिया गया, जिनका एक धार्मिक पहलू था, दूसरा पूँजीवादी दिखावे और बाजार का पहलू था। त्यौहारों के इस धार्मिक पहलू का इस्तेमाल राष्ट्रीय आन्दोलन के जमाने में रूढिवादी और पुनरुत्थानवादी राष्ट्रवादियों ने किया और आज इनका इस्तेमाल मुख्यत: धार्मिक कट्टपंथी फासिस्ट कर रहें हैं। त्यौहारों के पूँजीवादी सामाजिक आचार वाला पहलू नवउदारवाद के दशकों के दौरान हमारे सामाजिक जीवन के पूरे वितान पर छा गया है और रंध्र-रंध्र में घुस गया है।

अब पुराने त्यौहारों का पुन:संस्कार करके उन्हें सामूहिकता के ऊर्जस्वी-आवेगमय, आनन्दोल्लास से भरपूर उत्सवों में रूपान्तरित कर पाना सम्भव नहीं रह गया है। मजदूर वर्ग के हरावलों को वर्गसंघर्ष के प्रबल वेगवाही झंझावात का फिर से आवाहन करते हुए संचेतन तौर पर सामूहिकता के जश्न के अपने नये-नये रूप ठीक उसी प्रकार ईजाद करने होंगे, जिस प्रकार उन्हें सर्वहारावर्गीय सामूहिक वाद्य संगीत, स्वर संगीत (केवल लोकिप्रय ही नहीं बल्कि शास्त्रीय भी), थियेटर, सिनेमा आदि के नये-नये रूपों का संधान करना होगा। वर्ग संघर्ष का रूप आज लम्बे समय तक जारी रहने वाले अवस्थितिगत युद्ध ('पोजीशनल वारफेयर') का हो चुका है। इस 'पोजीशनल वारफेयर' के दौरान शत्रु ने अपनी खंदके खोद रखी हैं। हमें भी अपनी समांतर संस्थाएँ विकसित करनी होगी, सामूहिक सांस्कृतिक-सामाजिक आयोजनों, उत्सवों के वैकल्पिक रूप विकसित करने होंगे। यह प्रक्रिया तृणमूल स्तर पर लोकसत्ता के वैकल्पिक रूपों के भ्रूणों के विकास से अविभाज्यत: जुड़ी हुई होगी। सर्वहारा के दूरदर्शी हरावलों को जनसमुदाय की पहलकदमी को संगठित करने के नानाविध प्रयासों के साथ-साथ अक्टूबर क्रान्ति दिवस, मई दिवस, भगतसिंह-राजगुरु-सुखदेव जैसे क्रान्तिकारियों के शहादन दिवस आदि-आदि अवसरों पर घिसे-पिटे रुटीनी आयोजनों से आगे बढ़कर मेले, कार्निवाल, उत्सव, त्यौहार के विविध नये-नये रूप विकसित करने चाहिए। सांसकृतिक टोलियों को प्रचारात्मक लोकप्रिय प्रस्तुतियों और कार्यक्रमों के दायरों से बाहर आना होगा और स्टेज-कंसर्ट के साथ ही स्ट्रीट कंसर्ट के नये-नये रूप थियेटर के नये-नये प्रयोग आदि विकसित करने होंगे।

संघर्षरत जीवन को भी सिर्जनात्मकता की उत्प्रेरणा चाहिए। उत्पीड़ित निराश लोगों को और विद्रोह के लिए उठ खड़े हुए लोगों को-दोनों के ही जीवन में मनोरंजन का, उत्सव का स्थान होना चाहिए।

क्रान्तिकारी परिवर्तन चन्द दिनों का काम नहीं है। यह हू ब हू सामरिक युद्ध जैसा नहीं हो सकता। यह जीवन जैसा होता है। जीने का यह तरीका है। क्रान्ति में लगे लोगों के अपने उत्सव और कार्निवाल होने चाहिए और जिन्हें क्रान्ति की जरूरत है, उन को भी यदि खुशी मनाने के लिए, सर्जनात्मक ऊर्जा हासिल करने के लिए, उम्मीदों की फिर से खोज के लिए प्रेरित करने के लिए, नये-नये भविष्य-स्वप्न देने के लिए सामूहिकता के नये-नये उत्सवों के, कार्निवालों के रूप नहीं विकसित किये जायेंगे, तो वे अतीत की सामूहिकता की पुनर्प्राप्ति की मृगमरीचिका में जीते रहेंगे, धार्मिक मिथ्याभासी चेतना को शरण्य बनातें रहेंते और धार्मिक कट्टरपथी आखेटकों और मुनाफाखोर परभक्षियों के आखेट बनते रहेंगे।

नास्तिक केन्द्र विजयवाड़ा (आंध्र प्रदेश) में सम्पन्न अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन की रिपोर्ट

–सुमीत सिंह अमृतसर
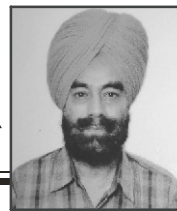
भारतवर्ष के प्रसिद्ध सामाजिक कार्यकर्त्ता एवं नास्तिक गोरा एवं उन की जीवन संगिनी सरस्वती गोरा के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में 'नास्तिक केन्द्र विजयवाड़ा' (आंध्र प्रदेश) के द्वारा 7–9 जनवरी 2023 को एक तीन दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में 'नास्तिकता, धर्मनिरपेक्षता एवं सामाजिक गतिविधियां' से संबंधित विषयों पर विस्तारपूर्वक चर्चा की गई। इस में तर्कशील सोसायटी पंजाब व हरियाणा समेत भारत के अन्य प्रान्तों की तर्कशील, गैर–धार्मिक, नास्तिक एवं मानवतावादी संस्थाओं के अतिरिक्त अमेरिका, जर्मनी, इंग्लैंड तथा नेपाल की तर्कशील संस्थाओं के नेताओं एवं प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन की अध्यक्षता तमिलनाडु की तर्कशील संस्था द्राविड़ कड़गम–तमिलनाडु के नेता एवं 'द मार्डर्न रेशनलिस्ट' पत्रिका के सह–संपादक वी. कुमारसन ने की। इस सम्मेलन में आंध्र प्रदेश विधान सभा के भूतपूर्व डिप्टी स्पीकर मंडाली बुद्धा प्रसाद एवं विधायक गड्डे राम मोहन मुख्य अतिथि के तौर पर शामिल हुए।

इस सम्मेलन के अध्यक्ष मण्डल में 'फ्रीडम फ्रॉम रिलीजन फाऊंडेशन–अमेरिका' के संस्थापक डॉन बार्कर, यूरोपियन काऊंसिल ऑफ स्केपटिकल आर्गेनाईजेशन–जर्मनी के अमरदियो सरमा, फ्रीडम फ्रॉम रिलीजन फाऊंडेशन के संचार निर्देशक अमिताभ पाल, फेडरेशन ऑफ इंडियन रेशनलिस्ट एसोसिएशन के अध्यक्ष नरेन्द्र नायक, ह्यूमनिस्ट इंटरनेशनल के उत्तम निरोला, ब्रिटिश हाई कमिशन दिल्ली के डिजिटल विभाग की अध्यक्षा मैडम साकथी एडमारकू (प्रसिद्ध रेशनलिस्ट सनल एडमारकू की पुत्री), महाराष्ट्र अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति के कार्यकारी अध्यक्ष अविनाश पाटिल, तर्कशील सोसायटी पंजाब के आगू एवं लेखक सुमीत सिंह, ह्यूमनिस्ट एवं रेशनलिस्ट आर्गेनाईजेशन ओडिशा के धनेश्वर साहू, नास्तिक केन्द्र विजयवाड़ा के अध्यक्ष डॉ. जी. स्मारम, निर्देशक जी. नियंता, मैडम मनोरमा, डॉ. एन. भास्कर एवं नर्सिंग होम के डॉ. मारू समिमलित हुए।

इस सम्मेलन के संयोजक एवं नास्तिक केन्द्र के अध्यक्ष डॉ. जी. स्मारम ने देश–विदेश की तर्कशील, नास्तिक एवं मानववादी संस्थाओं से आए हुए अतिथियों एवं प्रतिनिधियों का स्वागत करते हुए बताया कि नास्तिक केन्द्र विजयवाड़ा पिछले कई दशकों से अपने पूर्वज एवं इस केन्द्र के संस्थापक प्रसिद्ध नास्तिक गोरा एवं उनकी जीवन संगिनी सरस्वती गोरा की मानवतावादी विचारधारा के ज़रिये राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर धर्मनिर्पेक्षता, तर्कशीलता, नास्तिकता तथा मानवता के सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को प्रफुल्लित करने के लिए लगातार प्रयास करता आ रहा है तथा इसने वैज्ञानिक चिंतन एवं समाज–सुधार के क्षेत्र में विशाल स्तर पर परिवर्तन लाने में काफी सफलता हासिल की है। इस के उपरान्त नास्तिक केन्द्र की सांस्कृतिक टीम तथा वरिष्ठ कलाकार अन्नापूर्णा द्वारा स्वागत गीत प्रस्तुत किये गये, जबकि सबसे छोटी आयु के मास्टर साहस गोरा द्वारा स्वागती शब्दों के साथ मेहमानों का अभिनंदन किया गया।

सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए वी. कुमारसन ने कहा कि भारतवर्ष की तर्कशील, मानवतावादी एवं नास्तिक संस्थाएं देश के लोकतंत्र, धर्मनिर्पेक्षता, वैज्ञानिक चिंतन, सांप्रदायिक एकता तथा जनसाधारण के जनतान्त्रिक अधिकारों की रक्षा के लिए जी तोड़ प्रयत्न कर रही हैं परन्तु इसके बिल्कुल विपरीत आर. एस. एस. जैसे कुछ कट्टर धार्मिक संगठन समाज को धर्मों एवं संप्रदायों में बांट कर सांप्रदायिक घृणा तथा हिंसा फैला रही हैं तथा साथ ही वर्तमान सरकार द्वारा हिन्दुत्व के सांप्रदायिक एजेण्डे के अनुसार अल्पसंख्यकों के मौलिक अधिकारों तथा वैज्ञानिक सोच को कुचला जा रहा है। इसलिये हमें समस्त तर्कशील संस्थाओं को एकजुट होकर इस फासीवाद के विरुद्ध अपनी आवाज को बुलन्द करना होगा।

इस अवसर पर मुख्यातिथि मंडाली बुद्ध प्रसाद

एवं गड्डे राम मोहन ने नास्तिक केन्द्र विजयवाड़ा एवं अन्य तर्कशील संस्थाओं के द्वारा समाज सुधार एवं वैज्ञानिक चिंतन के क्षेत्र में किये जा रहे प्रमुख कार्यों की प्रशंसा की तथा अपना भरपूर सहयोग देने का विश्वास दिलाया। इस अवसर पर अध्यक्ष मण्डल के द्वारा सम्मेलन का सोविनियर भी जारी किया गया।

इस अवसर पर द्राविड़ कड़गम मद्रास के नामवर तर्कशील बुद्धिजीवी एवं रेशनलिस्ट फोरम तमिलनाडू के संस्थापक डॉ. के. वीरामनी का वीडियो संदेश प्रसारित किया गया, जिसमें उन्होंने कहा कि लोकतन्त्र, वैज्ञानिक चिंतन, नास्तिकता, स्वतन्त्र विचार, सामाजिक न्याय, धर्मनिर्पेक्षता तथा संघर्ष विश्व में अब तक के हुए सामाजिक एवं मानवीय विकास का मुख्य आधार रहे हैं तथा कोई भी देश इन जनतांत्रिक अधिकारों को अपने नागरिकों के लिए निश्चित किये बगैर स्थाई विकास नहीं कर सकता। उन्होंने समस्त तर्कशील तथा मानवतावादी संस्थाओं को धार्मिक एवं शासकीय फासीवाद का डट कर विरोध करने तथा तर्कशील विचारधारा एवं जनतन्त्र का प्रचार व प्रसार करने का न्यौता दिया।

इससे पूर्व सम्मेलन के सह-संयोजक तथा मंच संचालक डॉ. विकास गोरा ने सम्मेलन के मुख्य विषय से संबन्धित विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि बीते कुछ सालों से देश में धार्मिक प्रतिक्रियावाद, पौराणिक कथाएं एवं अंधविश्वास को उभार कर लोगों को वैज्ञानिक चेतना तथा जनतान्त्रिक अधिकारों से वंचित किया जा रहा है, परन्तु हमें तर्कशीलता, धर्मनिर्पेक्षता, वैज्ञानिक चिंतन एवं जनतन्त्र की रक्षा के लिए ऐसी बुराइयों का और अधिक मजबूती के साथ मुकाबला करने की जरूरत है। फ्रीडम फ्रॉम रिलीजन फाऊंडेशन अमेरिका के डॉन बार्कर व अमिताभ पाल ने चिंता प्रकट करते हुए कहा कि वर्तमान में सरकार द्वारा हिन्दुत्व के फासीवादी एजेण्डे के अधीन अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता खास तौर पर वैज्ञानिक सोच पर पाबंदियां लगाकर तर्कशील बुद्धिजीवियों तथा सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को झूठे केसों में फंसा कर जेलों में नज़रबंद किया जा रहा है, एक प्रकार से यह अघोषित आपातकाल है और इसे किसी भी प्रकार से अमृत काल नहीं कहा जा सकता। जर्मनी के अमरदियो सरमा ने भारत में तर्कशील एवं सेक्यूलर विचारधारा के लगातार प्रसार पर संतोष प्रकट करते हुए सांप्रदायिक फासीवाद एवं अंधराष्ट्रवाद का विरोध करने पर बल दिया। फिरा के अध्यक्ष नरेन्द्र नायक ने अपनी बात रखते हुए कहा कि देश में बढ़ रहे धार्मिक कट्टरवाद, डेरावाद, बाबावाद, पाखण्डवाद एवं अंधविश्वास का खात्मा करने के लिए हमें प्रत्येक वर्ग एवं क्षेत्र के लोगों में लगातार वैज्ञानिक चेतना का प्रचार एवं प्रसार करने की आवश्यकता है। उत्तम निरोला ने मोदी सरकार द्वारा भारतीय संविधान की धारा 51-ए (एच) के विपरीत शिक्षा के भगवाकरण एवं निजीकरण को भारत के भविष्य के लिए घातक करार देते हुए इसके विरुद्ध संगठित हो कर जन संघर्ष करने की आवश्यकता पर बल दिया।

इस अवसर पर तर्कशील सोसायटी पंजाब के आगू सुमीत सिंह ने तर्कशील सोसायटी पंजाब की विभिन्न गतिविधियों के बारे में जानकारी प्रदान करने के अलावा शहीद भगत सिंह, डॉ. ए. टी. कोवूर, पेरियर रामासामी तथा गोरा की क्रान्तिकारी विचारधारा का हवाला देते हुए कहा कि मौजूदा धार्मिक कट्टरवाद के खिलाफ तथा जनपक्षीय सामाजिक एवं वैज्ञानिक परिवर्तन के लिये हमें ऐसे जनपक्षीय दार्शनिकों से क्रान्तिकारी दिशा-निर्देशन लेकर आम जनता को चेतन करने के साथ-साथ अपने जनतांत्रिक अधिकारों की रक्षा के लिए सांगठनिक संघर्षों की ओर प्रेरित किया जाना चाहिए। उन्होंने इससे संबंधित कुछ प्रस्ताव पेश करते हुए सारे देश में अंधविश्वास विरोधी कानून लागू करने पर बल दिया। अविनाश पाटिल ने अपनी बात रखते हुए डॉ. नरेन्द्र दाभोलकर, प्रो. एम. एम. कलबुर्गी, गोविंद पानसरे तथा गौरी लंकेश को स्मरण करते हुए कहा कि हिन्दुत्ववादी संगठनों के सांप्रदायिक मनसूबों के बावजूद भारत में तर्कशील, धर्मनिर्पेक्ष, मानवतावादी एवं नास्तिक विचारधारा लगातार प्रफुल्लित हो रही है।

मैडम साकथी एडमारकू ने गोदी मीडिया द्वारा अंधविश्वास एवं बाबावाद का गैर-कानूनी तथा मिथ्या प्रचार किये जाने की भर्त्सना करते हुए कहा कि मौजूदा

विज्ञान के युग में अधिकांश लोग अब किसी कथित ईश्वर अथवा धर्म पर विश्वास करने के बजाय वैज्ञानिक एवं सामाजिक चेतना के द्वारा अपने जनतान्त्रिक अधिकार प्राप्त करने के लिए सांगठनिक संघर्ष कर रहे हैं। धानेश्वर साहू ने धर्म को राजनीति, शिक्षा, शासन प्रबन्ध, न्यायपालिका तथा सांविधानिक संस्थाओं से अलग रखने और संविधान की धारा 51-ए (एच.) के अनुसार लोगों में वैज्ञानिक चिंतन एवं मानवतावाद की भावना विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया। अध्यक्ष मण्डल में शामिल उपरोक्त सभी विद्वानों को स्मृतिचिन्ह दे कर सम्मानित किया गया।

दूसरे दिन प्रात:कालीन विशेष सत्र के अवसर पर तर्कशील सोसायटी पंजाब की मालेरकोटला इकाई के नेता मोहन बडला द्वारा वैज्ञानिक चेतना के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में पिछले 38 वर्षों में किये गये विकास एवं गतिविधियों की विस्तारपूर्वक डिजिटल प्रस्तुति की गई, जिसको वहां पर उपस्थित प्रतिनिधियों के द्वारा खूब पसन्द किया गया।

सायंकाल को सांस्कृतिक कार्यक्रम के अवसर पर नास्तिक केन्द्र की सांस्कृतिक मंडली के द्वारा लोकगीत, नृत्य, एकांकी नाटक एवं कोरियोग्राफी की प्रस्तुति की गई। साथ ही तर्कशील सोसायटी पंजाब की अमृतसर इकाई की नवजीत के द्वारा शहीद भगत सिंह के जीवन, क्रान्तिकारी दर्शन एवं उसके द्वारा देश की आज़ादी के लिए दिये गए अद्वित्तीय बलिदान व अमूल्य योगदान से संबन्धित विचार प्रस्तुत किये गये।

इस अवसर पर फिरा के राष्ट्रीय अध्यक्ष नरेन्द्र नायक द्वारा पाखण्डी बाबा सत्य साईं एवं अन्य पाखण्डी बाबाओं के द्वारा आम श्रद्धालुओं को धर्म व जादू की आड़ में मूर्ख बना कर लूटने वाले तथाकथित चमत्कारों का पर्दाफाश करने वाले ट्रिकों को प्रस्तुत करके लोगों को जागरूक किया गया।

सम्मेलन के दोनों दिनों में चले भिन्न-भिन्न सत्रों में मीडिया एवं धर्मनिर्पेक्षता, वैज्ञानिक चिन्तन एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता मानवाधिकार एवं नास्तिकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और शिक्षा, फासीवाद एवं आतंकवाद-विकास के मुख्य अवरोध, नास्तिकता एवं राजनीति, वर्तमान समय में समाज सुधार तथा अन्तर्राष्ट्रीय मानवतावादी लहर का भविष्य आदि महत्वपूर्ण विषयों पर नामवर विद्वानों एवं प्रतिनिधियों के द्वारा गंभीरता के साथ विचार विमर्श किया गया।

इस दौरान हुई विचार-चर्चा में उपरोक्त नामवर के अलावा डॉ. विकास गोरा, अमिताभ पाल, साकथी एडमारुकू, धानेश्वर साहू, तर्कशील सोसायटी पंजाब के सुमीत सिंह, मानववादी संस्था चण्डीगढ़ से मनोज मलिक, तर्कशील सोसायटी भारत के राजा राम हंडियाया, हंस पत्रिका के संपादक श्याम सुंनदर, कर्नाटक से वाल्मीकि नायक, ममता नायक, नई दिल्ली से राजिन्द्र सिंह, मानव विकास वेदिका आंध्र प्रदेश से डॉ. मनोज कुमार, नास्तिक केन्द्र से रश्मि स्मारम, डॉ. शुभा गोरा, डॉ. सुदीप्ति वर्धन, प्रो. उपेन्द्र रेड्डी, डॉ. प्रकाश नागेश्वर राव आदि ने भाग लिया। सम्मेलन के अन्तिम दिन प्रतिनिधियों को नास्तिक केन्द्र द्वारा चलाए जा रहे स्कूल, अस्पताल, वृद्धाश्रम तथा अजायब घर का भ्रमण करवाया गया। इस सम्मेलन का नास्तिक केन्द्र के यू-टयूब चैनल पर देश-विदेश में सीधा प्रसारण किया गया।

इस सम्मेलन में भिन्न-भिन्न तर्कशील संस्थाओं के अलावा तर्कशील सोसायटी पंजाब की अमृतसर इकाई से मनजीत बासरके, दमनजीत कौर, शरणजीत कौर, नवरीत, नवजीत तथा मानवववादी संस्था चण्डीगढ़ से श्रुति मलिक, पुलकित, नीलम रानी और कली राम आदि डेलीगेटों ने भी अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई। कुल मिला कर यह अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन देश-विदेश की तर्कशील, मानववादी, नास्तिक तथा धर्मनिरपेक्ष संस्थाओं को एक साझा मंच पर संगठित करने और राजकीय संरक्षण के अधीन बढ़ रहे धार्मिक प्रतिक्रियावाद, डेरावाद, बाबावाद तथा अंधविश्वासों के विरुद्ध साझा संघर्ष करने का संदेश देने में सफल रहा।

-हिन्दी अनुवाद
बलवन्त सिंह लेक्चरार

अंधविश्वास का डर जानलेवा

– गनपत लाल

गांव और शहर, अनपढ़ और पढ़े-लिखे व्यक्ति सब लोग डायन और भूत के भय के कारण थरथर कापते रहते हैं। जब हम छत्तीसगढ़ की बात करते हैं तो यहां के लोग डायन और भूत की कहानी सुनाने लग जाते हैं। और डर के कारण अच्छे-अच्छे लोग के पसीने निकल जाते हैं। किसी झूठी बात को बार-बार और जगह-जगह बोलने से वे बात सच्ची जैसी लगती हैं। अभी तक मैं जितने भी बात सुने हैं, उसके लिए मुझे सख्त प्रमाण नहीं मिला। सब हवा-हवाई बातें बताते हैं।

गांव के कुछ ओझा-तांत्रिक (बड़गा-गुनिया) से भी बातचीत की, फिर उन लोगों भी गोल-मटोल और उल्टा-पुलटा ढंग से जवाब दिए। हमारे पढ़े-लिखे समाज में आज भी महिलाओं को डायन के नाम पर लगातार मारने की घटना घोर अंधविश्वास को दिखाती है। सोचने की बात यह है कि आज पढ़े-लिखे व्यक्ति भी गांव के अनपढ़ व्यक्ति की काल्पनिक कहानी को मान कर उससे भी आगे निकल गये हैं। जबकि पढ़े-लिखे व्यक्ति को चाहिए कि अंधविश्वास के कुंआ में डूबते हुए जनमानस को निकाले। लेकिन क्या करें ये लोग अंधविश्वास और झूठी बातों के तूफान में उड़ रहे हैं।

छोटी सी उम्र से सुनते आ रहा हूं कि डायन (टोनही) के पास ऐसी शक्ति होती है कि वे हजारों लोगों को एक अकेले मार सकती है। आग और पानी भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। तब मैं ये पूछना चाहता हूं कि गांव में कोई महिला को डायन कह कर लोग मारते हैं, तब उस समय वह अपनी जान को क्यों नहीं बचा पाती। अपनी जान को नहीं बचा सकती वह बेचारी क्या दूसरे की जान ले सकती है और दूसरे के अहित कर सकती है? एक और बात सुनने में मिलती हैं कि डायन से सिर्फ तांत्रिक ही मुकाबला कर सकता है, कहते हैं कि तांत्रिक के पास बड़ी-बड़ी शक्तियां होती हैं। वह कितनी भी बीमारी हो एक ही बार में ठीक कर देता है। तब मैं ये पूछता हूं कि हमारे देश में और छत्तीसगढ़ में इतने अस्पताल और डॉक्टरों की बाढ़ कैसे आ गई है।

तांत्रिक से बीमारियों का इलाज होता तो अस्पताल में भीड़ नहीं होती।

गांव के तांत्रिक से सभी बीमारियों का इलाज होता तब ये भीड़ अस्पताल में नहीं दिखती। जो तांत्रिक सभी बीमारी और समस्या के निपटारा की बात करते हैं वे खुद डॉक्टर के अस्पताल में क्यों इलाज कराता है, उसके पास तो सभी बीमारियों से निपटने की शक्ति है तो खुद का इलाज खुद कर नहीं करता। जादू-टोना, ओझा-तांत्रिक समाज के अंदर ऐसे समा गए है जो समाज के लिए बहुत खतरनाक है। जब तक ये बीमारी नाश नहीं होती है, तब तक लोग डर-डर कर मरते रहेंगे।

गांव में आज भी किसी व्यक्ति को बुखार और दूसरी बीमारी होती है तो वे डॉक्टर को नहीं दिखा कर ओझा-तांत्रिक के पास जाते हैं। भले उसकी जान चली जाए। एक मेरे करीबी के पढ़े-लिखे व्यक्ति जिसकी बच्ची के शरीर में खाज-खुजली हो गई थी वे तांत्रिक के पास झाड़फूंक करवाता था। इस ओझा-तांत्रिक के चक्कर में डॉक्टरी इलाज नहीं हो पाया तो उसकी बच्ची की खुजली शरीर में फैलने लगी तब मैं इसको कहा कि इसका इलाज कोई चर्म रोग विशेषज्ञ से कराए, तब वे मेरी बात को बहुत मुश्किल से माना और डॉक्टर के पास ले गए तब जाकर वह बच्ची ठीक हुई।

सरकार आंख बंदकर देख रही तमाशा

अब जो कॉलेज और यूनिवर्सिटी में पढ़े हैं और जो पढ़-पढ़ा रहे हैं, वे भी ऐसे झाड़-फूंक में विश्वास करते हैं तो गांव के साधारण व्यक्ति से क्या उम्मीद कर सकते हैं। गांव के अनपढ़ लोग तो ये पढ़े-लिखे (डिग्रीधारी) लोगों को देखकर उसके पीछे-पीछे जाते हैं। इस प्रकार के समाज में अंधविश्वास को फैलाने में इन पढ़े-लिखे अंधविश्वासी लोगों का बड़ा हाथ है। वैसे अगर तांत्रिक की बात करें तो ये लोग बीमार व्यक्ति को टोटके और भूत-प्रेत, डायन, प्रेत के भय दिखा के पैसा लूटता है। ऐसे अंधविश्वास फैलाने वालों पर कठोर कानूनी कार्रवाई होनी

चाहिए। जिससे हमारा समाज को अंधविश्वास की दलदल से बचाया जा सके, लेकिन सरकार आंख बंदकर तमाशा देख रही है।

बचपन में सुनी हुई काल्पनिक कहानियां कोमल मन में डालती है खतरनाक प्रभाव

जानकार लोग कहते हैं कि बचपन में सुनी हुई काल्पनिक कहानियां बच्चों के कोमल मन में खतरनाक प्रभाव डालती है। जिससे वे व्यक्ति जीवन भर नहीं निकल पाता है। मनुष्य बच्चे के जन्म होते ही उसके गले पर ताबीज और हाथ में काला धागा, यहां तक के उसके पैर में भी काला धागा बांध देते हैं। ये अंधविश्वास के धागे फिर जीवन भर नहीं छूटते। जब बच्चे अपने माता-पिता से पूछते हैं कि ये धागे और ताबीज-कंडा को किसलिए पहने, तब वे बच्चे को डांटकर चुप करा देते हैं। नहीं तो तरह-तरह के प्रेत और डायन की कहानियां सुनाकर बच्चे का मनोबल को गिराया जाता है। जो उस बच्चे की उम्र भर कष्ट देता है।

ऐसे में कैसे विज्ञान को पढ़ और समझ पाएंगे बच्चे

जब वे बच्चे जानने-समझने के लायक बड़े हो जाता है तब भी से वे वैज्ञानिक सोच को नहीं अपना सकता और अंधविश्वास की बेड़ी में बंधे रहते हैं। अब सोचने वाली बात यह है कि जो बच्चे विज्ञान और गणित की पढ़ाई करते हैं, वे भी मंत्र-तंत्र, भूत-प्रेत, डायन जैसी चीजों पर विश्वास करते हैं और ताबीज-कंडा लटकाकर घूमते हैं। तब उस बच्चे पर मुझे तरस आता है कि ये क्या विज्ञान को समझ पाएगा और क्या मिसाइल और विज्ञान के क्षेत्र में खोज कर पाएगा और क्या डॉक्टर बनकर मरीज को बचा पाएगा? अब देश-समाज को बचाना है तो अपने बच्चे को वैज्ञानिक और प्रगतिशील विचार को बताएं और सीखाएं। काल्पनिक बातों और अंधविश्वासों का खुलकर विरोध करें, तब हमारी आने वाली पीढ़ी बच पाएगी।

छत्तीसगढ़ी से हिंदी अनुवाद - मनोवैज्ञानिक टिकेश कुमार

खजूरी खास इलाके का मामला, आरोपी गिरफ्तार

समाधान ढूंढने बाबा के पास गई महिला से रेप

नीरज आर्या, नई दिल्ली : अंधविश्वास के कारण कुछ वर्ष पहले बुराड़ी में रहने वाले एक पूरे परिवार ने मौत को गले लगा लिया था। इस घटना ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया। इसके बावजूद अब भी अंधविश्वास के प्रति लोगों को जागरूक करने की कोई पहल नहीं हो रही। इसी बात का फायदा कुछ लोग अपनी दुकान चलाकर उठा रहे हैं। वे दवाईयों के जरिए भूत प्रेत बाधा से ग्रस्त रोगियों को जल्द ठीक करने का दावा तक करते हैं। दिल्ली के खजूरी खास इलाके में रहने वाली एक महिला कुछ इस तरह की परेशानी का निदान ढूँढने के लिए एक बाबा के पास गई थी। यहां बाबा ने उपचार के बहाने उसके साथ रेप किया। बाद में उसे इस बारे में किसी को कुछ बताए जाने पर भस्म हो जाने का भी डर दिखाया। कुछ दिन शांत रहने के बाद पीड़िता ने चुप्पी तोड़ दी, जिसके बाद यह मामला पुलिस के पास पहुंच गया। पुलिस ने शिकायत के मद्देनज़र मुकद्दमा दर्ज कर आरोपी ग्रिफ़्तार कर लिया। इसकी पहचान याकूब (49) के तौर पर हुई।

पुलिस के मुताबिक खजूरी खास क्षेत्र में रहने वाली 37 साल की महिला पिछले काफी दिनों से परेशान थी। उसे रात को डरावने सपने दिखते थे। ऐसे में किसी ने इस महिला को इसका इलाज कराने के लिए एक बाबा याकूब के पास जाने की हिदायत दी। महिला पहुंची तो आरोपी ने उसके सिर पर हाथ रख एक तावीज दी। साथ ही कहा कि वह बिल्कुल भी ना डरे। इसके बाद आरोपी ने कुछ मंत्र बोलने के बाद उसके साथ गलत काम किया। वहां से जाते वक्त बाबा ने धमकी दी कि अगर इस बारे में वह किसी को कुछ बताएगी तो भस्म हो जाएगी। महिला घर चली गई। उसकी परेशानी पहले से ज्यादा बढ़ गई। रात में उसका डर खत्म नहीं हुआ। ऐसे में उसे समझ आ गया कि बाबा ने उसका इलाज करने के बहाने उसकी परेशानी का फायदा उठाया है। महिला ने अपने पति को पूरी बात बता दी। इसके बाद मामले की सूचना पुलिस को दी गई।

`(दैनिक भास्कर, नई दिल्ली, 10-2-2023)

बहिष्करण की शिक्षा नीति

-सीमा आज़ाद

भारत की शिक्षा व्यवस्था प्राचीन काल से ही बहिष्करण की शिक्षा व्यवस्था रही है। इस व्यवस्था में वर्ण विशेष के पुरुषों को ही शिक्षा हासिल करने का अधिकार था। दलित पिछड़े और महिलाओं के बड़े समूह को इससे बहिष्कृत कर दिया गया था। गलती से भी अगर संस्कृत का श्लोक इन्होंने सुन लिया तो इनके कान में पिघला हुआ शीशा डाल देने का प्रावधान था। एकलव्य जैसे आदिवासी-दलित यदि स्वाध्याय से विद्या हासिल कर लेते थे, तो उनके द्वारा विद्या को इस्तेमाल करने का रास्ता बंद कर दिया जाता था। अंगूठा काट लेना इसी का प्रतीक है।

लेकिन दमन कभी भी अनन्त काल तक कायम नहीं रहता। इसी तबके की चेतना बढ़ने के साथ इसने भी शिक्षा के अधिकार के लिए लड़ना शुरू किया। ज्योतिबा फूले सावित्री बाई फूले जैसे तमाम जाने अनजाने लोगों ने शिक्षा के प्राचीन बहिष्करण के स्वरूप को बदलकर सबके लिए शिक्षा के अधिकार को संविधान में स्थापित किया। खास तौर पर सदियों से शिक्षा से बहिष्कृत रहे लोगों के लिए शिक्षा सुनिश्चित करने के उन्होंने कई उपाय न सिर्फ सुझाये, बल्कि लागू करने की कोशिश भी की। भारत के मनुवादी आर्थिक आधार के कारण अभी यह कोशिश कामयाब भी नहीं हो पाई थी, कि मनुवाद के नुमाइंदों ने 'नई शिक्षा नीति 2020' के माध्यम से फिर से देश में बहिष्करण की शिक्षा व्यवस्था लागू कर दी, जो नये सत्र से देश भर में लागू होने जा रही है। इस शिक्षा व्यवस्था से लाखों छात्र विश्वविद्यालयी शिक्षा से किस प्रकार वंचित हो जायेंगे, यह अभी से दिखने लगा है, जब सभी विश्वविद्यालय एक-एक कर फीस में बेतहाशा बढ़ोतरी कर रहे हैं। वंचितों के आगे बढ़ने के लिए बनाये गये हर रास्ते पर कांटे बिछाने का काम करने में जुट गये हैं। दरअसल यह नये तरीके से उनका अंगूठा काटने की साजिश है। शिक्षा तो रहेगी, लेकिन एक बड़ा तबका उससे बहिष्कृत कर दिया जायेगा।

यह हमला केवल छात्रों पर नहीं, बल्कि वहां पढ़ाने वाले शिक्षकों पर भी है। बहिष्कृत समुदाय से अंगूठा न मांगने वाले शिक्षकों को भी बहिष्कृत किये जाने की तैयारी हर तरीके से पक्की कर ली गयी है। उन्हें आन्दोलनों, विरोध प्रदर्शनों की मनाही कर दी गयी है। जबकि विश्वविद्यालयों के खर्च निकलने का बोझ इसी शिक्षा नीति के तहत उन पर भी डाला जाना है जिनके सर्कुलर उनके पास भेजे जाने लगे हैं। निकाले जाने की धमकी दी जाने लगी, लेकिन डर के कारण शिक्षक समुदाय नहीं बोल रहा है, क्योंकि उसके पास खोने के लिए लाखों रुपये की तनख्वाह है। हेनी बाबू, साईं बाबा, वरवर राव, शोमा सेन जैसे विद्रोही शिक्षकों को देश का 'सबसे खतरनाक दिमाग' घोषित कर जेल भेजे जाने का सिलसिला नई शिक्षा नीति के लाने के पहले से तेज़ किया जा चुका है। साईं बाबा के हालिया अन्यायी फैसले में यह बात भी खुलकर सामने आ चुकी है कि सरकार सबसे अधिक 'तेज दिमाग' से डरती है। शारीरिक रूप से 90 प्रतिशत असक्षम साईं बाबा के मामले में सरकार की ओर से बार-बार यही टिप्पणी की गयी है। इससे समझा जा सकता है कि सरकार शिक्षा व्यवस्था को क्यों कुंद बनाना चाहती है, क्यों वह शिक्षा से बहुत बड़ी आबादी को बहिष्कृत करना चाहती है।

सरकार नहीं चाहती कि देश में तेज दिमाग वाले लोग पैदा हों। क्योंकि 'तेज दिमाग' वाले लोग ही बहिष्करण की राजनीति को न सिर्फ समझते हैं, बल्कि उसके खिलाफ मोर्चाबंदी भी करते हैं। लेकिन जैसा कि पहले कहा गया अन्याय और दमन कभी अनंतकाल तक नहीं टिकता, उसके खिलाफ मोर्चाबंदी हो ही जाती है। फिर यह तो विद्यार्थियों का मामला है, बदलाव की ललक जिसकी प्रकृति है। हमेशा समाज बदलाव में छात्रों-नौजवानों ने महत्वपूर्ण और निर्णायक भूमिका निभाई है। नई शिक्षा नीति 2020 के अमल की आहट पाते ही फीस बढ़ोत्तरी के खिलाफ हर विश्वविद्यालय आन्दोलित है। चुनावी राजनीति के आन्दोलन तक ही सीमित रखना चाहते हैं, जबकि यह मसला शिक्षा में बहिष्करण की फासीवादी राजनीति से लड़ने का है, इस राजनीति को पहले भी सिर्फ और सिर्फ क्रांतिकारी राजनीति ने टक्कर दी है। अब भी उसी से इसके खिलाफ लड़ा जा सकता है। अब यह छात्रों पर है कि वे विश्वविद्यालयों को पूंजीपतियों के हाथों सौंप देंगे या उसे क्रांतिकारी राजनीति का अड्डा बना देंगे।

95062-07222

भगत सिंह (1931)

मैं नास्तिक क्यों हूँ?

''यह लेख भगत सिंह ने जेल में रहते हुए लिखा था और यह 27 सितम्बर 1931 को लाहौर के अखबार '**द पीपल**' में प्रकाशित हुआ। इस लेख में भगतसिंह ने ईश्वर कि उपस्थिति पर अनेक तर्कपूर्ण सवाल खड़े किये हैं और इस संसार के निर्माण, मनुष्य के जन्म, मनुष्य के मन में ईश्वर की कल्पना के साथ साथ संसार में मनुष्य की दीनता, उसके शोषण, दुनिया में व्याप्त अराजकता और और वर्गभेद की स्थितियों का भी विश्लेषण किया है। यह भगत सिंह के लेखन के सबसे चर्चित हिस्सों में रहा है।

स्वतन्त्रता सेनानी बाबा रणधीर सिंह 1930-31के बीच लाहौर के सेन्ट्रल जेल में कैद थे। वे एक धार्मिक व्यक्ति थे जिन्हें यह जान कर बहुत कष्ट हुआ कि भगतसिंह का ईश्वर पर विश्वास नहीं है। वे किसी तरह भगत सिंह की कालकोठरी में पहुँचने में सफल हुए और उन्हें ईश्वर के अस्तित्व पर यकीन दिलाने की कोशिश की। असफल होने पर बाबा ने नाराज होकर कहा, प्रसिद्धि से तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है और तुम अहंकारी बन गए हो जो कि एक काले पर्दे के तरह तुम्हारे और ईश्वर के बीच खड़ी है। इस टिप्पणी के जवाब में ही भगतसिंह ने यह लेख लिखा।''

एक नया प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। क्या मैं किसी अहंकार के कारण सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी तथा सर्वज्ञानी ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास नहीं करता हूँ? मेरे कुछ दोस्त - शायद ऐसा कहकर मैं उन पर बहुत अधिकार नहीं जमा रहा हूँ - मेरे साथ अपने थोड़े से सम्पर्क में इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये उत्सुक हैं कि मैं ईश्वर के अस्तित्व को नकार कर कुछ ज़रूरत से ज़्यादा आगे जा रहा हूँ और मेरे घमण्ड ने कुछ हद तक मुझे इस अविश्वास के लिये उकसाया है। मैं ऐसी कोई शेखी नहीं बघारता कि मैं मानवीय कमज़ोरियों से बहुत ऊपर हूँ। मैं एक मनुष्य हूँ, और इससे अधिक कुछ नहीं। कोई भी इससे अधिक होने का दावा नहीं कर सकता। यह कमज़ोरी मेरे अन्दर भी है। अहंकार भी मेरे स्वभाव का अंग है। अपने कामरेडों के बीच मुझे निरंकुश कहा जाता था। यहाँ तक कि मेरे दोस्त श्री बटुकेश्वर कुमार दत्त भी मुझे कभी-कभी ऐसा कहते थे। कई मौकों पर स्वेच्छाचारी कह मेरी निन्दा भी की गयी। कुछ दोस्तों को शिकायत है, और गम्भीर रूप से है कि मैं अनचाहे ही अपने विचार, उन पर थोपता हूँ और अपने प्रस्तावों को मनवा लेता हूँ। यह बात कुछ हद तक सही है। इससे मैं इनकार नहीं करता। इसे अहंकार कहा जा सकता है। जहाँ तक अन्य प्रचलित मतों के मुकाबले हमारे अपने मत का सवाल है। मुझे निश्चय ही अपने मत पर गर्व है। लेकिन यह व्यक्तिगत नहीं है। ऐसा हो सकता है कि यह केवल अपने विश्वास के प्रति न्यायोचित गर्व हो और इसको घमण्ड नहीं कहा जा सकता। घमण्ड तो स्वयं के प्रति अनुचित गर्व की अधिकता है। क्या यह अनुचित गर्व है, जो मुझे नास्तिकता की ओर ले गया? अथवा इस विषय का खूब सावधानी से अध्ययन करने और उस पर खूब विचार करने के बाद मैंने ईश्वर पर अविश्वास किया?

मैं यह समझने में पूरी तरह से असफल रहा हूँ कि अनुचित गर्व या वृथाभिमान किस तरह किसी व्यक्ति के ईश्वर में विश्वास करने के रास्ते में रोड़ा बन सकता है? किसी वास्तव में महान व्यक्ति की महानता को मैं मान्यता न दूँ - यह तभी हो सकता है, जब मुझे भी थोड़ा ऐसा यश प्राप्त हो गया हो जिसके या तो मैं योग्य नहीं हूँ या मेरे अन्दर वे गुण नहीं हैं, जो इसके लिये आवश्यक हैं। यहाँ तक तो समझ में आता है। लेकिन यह कैसे हो सकता है कि एक व्यक्ति, जो ईश्वर में विश्वास रखता हो, सहसा अपने व्यक्तिगत अहंकार के कारण उसमें विश्वास करना बन्द कर दे? दो ही रास्ते सम्भव हैं। या तो मनुष्य अपने को ईश्वर का प्रतिद्वन्द्वी समझने लगे या वह स्वयं को ही ईश्वर मानना शुरू कर दे। इन दोनों ही अवस्थाओं में वह सच्चा नास्तिक नहीं बन सकता। पहली अवस्था में तो वह अपने प्रतिद्वन्द्वी के अस्तित्व को नकारता ही नहीं है। दूसरी अवस्था में भी वह एक ऐसी चेतना के अस्तित्व को मानता है, जो पर्दे के पीछे से प्रकृति की सभी गतिविधियों का संचालन करती है। मैं तो उस सर्वशक्तिमान परम आत्मा के अस्तित्व से ही इनकार करता हूँ। यह अहंकार नहीं है, जिसने मुझे नास्तिकता के सिद्धान्त को ग्रहण करने के लिये प्रेरित किया। मैं न तो एक प्रतिद्वन्द्वी हूँ, न ही एक अवतार और न ही स्वयं परमात्मा। इस अभियोग को अस्वीकार करने के लिये आइए तथ्यों पर गौर करें। मेरे इन दोस्तों के अनुसार, दिल्ली बम केस और लाहौर षडयन्त्र केस के दौरान मुझे जो अनावश्यक यश मिला, शायद उस कारण मैं वृथाभिमानी हो गया हूँ।

मेरा नास्तिकतावाद कोई अभी हाल की उत्पत्ति नहीं है। मैंने तो ईश्वर पर विश्वास करना तब छोड़ दिया था, जब मैं एक अप्रसिद्ध नौजवान था। कम से कम एक कालेज का विद्यार्थी तो ऐसे किसी अनुचित अहंकार को नहीं पाल-पोस सकता, जो उसे नास्तिकता की ओर ले जाये। यद्यपि मैं कुछ अध्यापकों का चहेता था तथा कुछ अन्य को मैं अच्छा नहीं लगता था। पर मैं कभी भी बहुत मेहनती अथवा पढ़ाकू विद्यार्थी नहीं रहा। अहंकार जैसी भावना में फँसने का कोई मौका ही न मिल सका। मैं तो एक बहुत लज्जालु स्वभाव का लड़का था, जिसकी भविष्य के बारे में कुछ निराशावादी प्रकृति थी। मेरे बाबा, जिनके प्रभाव में मैं बड़ा हुआ, एक रूढ़िवादी आर्य समाजी हैं। एक आर्य समाजी और कुछ भी हो, नास्तिक नहीं होता। अपनी प्राथमिक शिक्षा पूरी करने के बाद मैंने डी० ए० वी० स्कूल, लाहौर में प्रवेश लिया और पूरे एक साल उसके छात्रावास में रहा। वहाँ सुबह और शाम की प्रार्थना के अतिरिक्त में घण्टों गायत्री मंत्र जपा करता था। उन दिनों मैं पूरा भक्त था। बाद में मैंने अपने पिता के साथ रहना शुरू किया। जहाँ तक धार्मिक रूढ़िवादिता का प्रश्न है, वह एक उदारवादी व्यक्ति हैं। उन्हीं की शिक्षा से मुझे स्वतन्त्रता के ध्येय के लिये अपने जीवन को समर्पित करने की

प्रेरणा मिली। किन्तु वे नास्तिक नहीं हैं। उनका ईश्वर में दृढ़ विश्वास है। वे मुझे प्रतिदिन पूजा-प्रार्थना के लिये प्रोत्साहित करते रहते थे। इस प्रकार से मेरा पालन-पोषण हुआ। असहयोग आन्दोलन के दिनों में राष्ट्रीय कालेज में प्रवेश लिया। यहाँ आकर ही मैंने सारी धार्मिक समस्याओं – यहाँ तक कि ईश्वर के अस्तित्व के बारे में उदारतापूर्वक सोचना, विचारना तथा उसकी आलोचना करना शुरू किया। पर अभी भी मैं पक्का आस्तिक था। उस समय तक मैं अपने लम्बे बाल रखता था। यद्यपि मुझे कभी-भी सिक्ख या अन्य धर्मों की पौराणिकता और सिद्धान्तों में विश्वास न हो सका था। किन्तु मेरी ईश्वर के अस्तित्व में दृढ़ निष्ठा थी। बाद में मैं क्रान्तिकारी पार्टी से जुड़ा। वहाँ जिस पहले नेता से मेरा सम्पर्क हुआ वे तो पक्का विश्वास न होते हुए भी ईश्वर के अस्तित्व को नकारने का साहस ही नहीं कर सकते थे। ईश्वर के बारे में मेरे हठ पूर्वक पूछते रहने पर वे कहते, 'जब इच्छा हो, तब पूजा कर लिया करो।' यह नास्तिकता है, जिसमें साहस का अभाव है। दूसरे नेता, जिनके मैं सम्पर्क में आया, पक्के श्रद्धालु आदरणीय कामरेड शचीन्द्र नाथ सान्याल आजकल काकोरी षडयन्त्र केस के सिलसिले में आजीवन कारवास भोग रहे हैं। उनकी पुस्तक 'बन्दी जीवन' ईश्वर की महिमा का ज़ोर-शोर से गान है। उन्होंने उसमें ईश्वर के ऊपर प्रशंसा के पुष्प रहस्यात्मक वेदान्त के कारण बरसाये हैं। 28 जनवरी, 1925 को पूरे भारत में जो 'दि रिवोल्यूशनरी' (क्रान्तिकारी) पर्चा बाँटा गया था, वह उन्हीं के बौद्धिक श्रम का परिणाम है। उसमें सर्वशक्तिमान और उसकी लीला एवं कार्यों की प्रशंसा की गयी है। मेरा ईश्वर के प्रति अविश्वास का भाव क्रान्तिकारी दल में भी प्रस्फुटित नहीं हुआ था। काकोरी के सभी चार शहीदों ने अपने अन्तिम दिन भजन-प्रार्थना में गुजारे थे। राम प्रसाद 'बिस्मिल' एक रूढ़िवादी आर्य समाजी थे। समाजवाद तथा साम्यवाद में अपने वृहद अध्ययन के बावजूद राजेन लाहड़ी उपनिषद एवं गीता के श्लोकों के उच्चारण की अपनी अभिलाषा को दबा न सके। मैंने उन सब मे सिर्फ एक ही व्यक्ति को देखा, जो कभी प्रार्थना नहीं करता था और कहता था, 'दर्शन शास्त्र मनुष्य की दुर्बलता अथवा ज्ञान के सीमित होने के कारण उत्पन्न होता है। वह भी आजीवन निर्वासन की सजा भोग रहा है। परन्तु उसने भी ईश्वर के अस्तित्व को नकारने की कभी हिम्मत नहीं की।'

इस समय तक मैं केवल एक रोमान्टिक आदर्शवादी क्रान्तिकारी था। अब तक हम दूसरों का अनुसरण करते थे। अब अपने कन्धों पर ज़िम्मेदारी उठाने का समय आया था। यह मेरे क्रान्तिकारी जीवन का एक निर्णायक बिन्दु था। 'अध्ययन' की पुकार मेरे मन के गलियारों में गूँज रही थी-विरोधियों द्वारा रखे गये तर्कों का सामना करने योग्य बनने के लिये अध्ययन करो। अपने मत के पक्ष में तर्क देने के लिये सक्षम होने के वास्ते पढ़ो। मैंने पढ़ना शुरू कर दिया। इससे मेरे पुराने विचार व विश्वास अद्भुत रूप से परिष्कृत हुए। रोमांस की जगह गम्भीर विचारों ने ली ली। न और अधिक रहस्यवाद, न ही अन्धविश्वास। यथार्थवाद हमारा आधार बना। मुझे विश्वक्रान्ति के अनेक आदर्शों के बारे में पढ़ने का खूब मौका मिला। मैंने अराजकतावादी नेता बाकुनिन को पढ़ा, कुछ साम्यवाद के पिता मार्क्स को, किन्तु अधिक लेनिन, त्रात्स्की, व अन्य लोगों को पढ़ा, जो अपने देश में सफलतापूर्वक क्रान्ति लाये थे। ये सभी नास्तिक थे। बाद में मुझे निरलम्ब स्वामी की पुस्तक 'सहज ज्ञान' मिली। इसमें रहस्यवादी नास्तिकता थी। 1926 के अन्त तक मुझे इस बात का विश्वास हो गया कि एक सर्वशक्तिमान परम आत्मा की बात, जिसने ब्रह्माण्ड का सृजन, दिग्दर्शन और संचालन किया, एक कोरी बकवास है। मैंने अपने इस अविश्वास को प्रदर्शित किया। मैंने इस विषय पर अपने दोस्तों से बहस की। मैं एक घोषित नास्तिक हो चुका था।

मई 1927 में मैं लाहौर में गिरफ़्तार हुआ। रेलवे पुलिस हवालात में मुझे एक महीना काटना पड़ा। पुलिस अफ़सरों ने मुझे बताया कि मैं लखनऊ में था, जब वहाँ काकोरी दल का मुकदमा चल रहा था, कि मैंने उन्हें छुड़ाने की किसी योजना पर बात की थी, कि उनकी सहमति पाने के बाद हमने कुछ बम प्राप्त किये थे, कि 1927 में दशहरा के अवसर पर उन बमों में से एक परीक्षण के लिये भीड़ पर फेंका गया, कि यदि मैं क्रान्तिकारी दल की गतिविधियों पर प्रकाश डालने वाला एक वक्तव्य दे दूँ, तो मुझे गिरफ़्तार नहीं किया जायेगा और इसके विपरीत मुझे अदालत में मुखबिर की तरह पेश किये बेगैर रिहा कर दिया जायेगा और इनाम दिया जायेगा। मैं इस प्रस्ताव पर हँसा। यह सब बेकार की बात थी। हम लोगों की भाँति विचार रखने वाले अपनी निर्दोष जनता पर बम नहीं फेंका करते। एक दिन सुबह सी० आई० डी० के वरिष्ठ अधीक्षक श्री न्यूमन ने कहा कि यदि मैंने वैसा वक्तव्य नहीं दिया, तो मुझ पर काकोरी केस से सम्बन्धित विद्रोह छेड़ने के षडयन्त्र तथा दशहरा उपद्रव में क्रूर हत्याओं के लिये मुकदमा चलाने पर बाध्य होंगे और कि उनके पास मुझे सजा दिलाने व फाँसी पर लटकवाने के लिये उचित प्रमाण हैं। उसी दिन से कुछ पुलिस अफ़सरों ने मुझे नियम से दोनो समय ईश्वर की स्तुति करने के लिये फुसलाना शुरू किया। पर अब मैं एक नास्तिक था। मैं स्वयं के लिये यह बात तय करना चाहता था कि क्या शान्ति और आनन्द के दिनों में ही मैं नास्तिक होने का दम्भ भरता हूँ या ऐसे कठिन समय में भी मैं उन सिद्धान्तों पर अडिग रह सकता हूँ। बहुत सोचने के बाद मैंने निश्चय किया कि किसी भी तरह ईश्वर पर विश्वास तथा प्रार्थना मैं नहीं कर सकता। नहीं, मैंने एक क्षण के लिये भी नहीं की। यही असली परीक्षण था और मैं सफल रहा। अब मैं एक पक्का अविश्वासी था और तब से लगातार हूँ। इस परीक्षण पर खरा उतरना आसान काम न था। 'विश्वास' कष्टों को हलका कर देता है। यहाँ तक कि उन्हें सुखकर बना सकता है। ईश्वर में मनुष्य को अत्यधिक सान्त्वना देने वाला एक आधार मिल सकता है। उसके बिना मनुष्य को अपने ऊपर निर्भर करना पड़ता है। तूफ़ान और झंझावात के बीच अपने पाँवों पर खड़ा रहना कोई बच्चों का खेल नहीं है। परीक्षा की इन घड़ियों में अहंकार यदि है, तो भाप बन कर उड़ जाता है और मनुष्य अपने विश्वास को ठुकराने का साहस नहीं कर पाता। यदि ऐसा करता है, तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके पास सिर्फ़ अहंकार

नहीं वरन् कोई अन्य शक्ति है। आज बिलकुल वैसी ही स्थिति है। निर्णय का पूरा-पूरा पता है। एक सप्ताह के अन्दर ही यह घोषित हो जायेगा कि मैं अपना जीवन एक ध्येय पर न्यौछावर करने जा रहा हूँ। इस विचार के अतिरिक्त और क्या सान्त्वना हो सकती है? ईश्वर में विश्वास रखने वाला हिन्दू पुनर्जन्म पर राजा होने की आशा कर सकता है। एक मुसलमान या ईसाई स्वर्ग में व्याप्त समृद्धि के आनन्द की तथा अपने कष्टों और बलिदान के लिये पुरस्कार की कल्पना कर सकता है। किन्तु मैं क्या आशा करूँ? मैं जानता हूँ कि जिस क्षण रस्सी का फ़न्दा मेरी गर्दन पर लगेगा और मेरे पैरों के नीचे से तख़्ता हटेगा, वह पूर्ण विराम होगा – वह अन्तिम क्षण होगा। मैं या मेरी आत्मा सब वहीं समाप्त हो जायेगी। आगे कुछ न रहेगा। एक छोटी सी जूझती हुई ज़िन्दगी, जिसकी कोई ऐसी गौरवशाली परिणति नहीं है, अपने में स्वयं एक पुरस्कार होगी – यदि मुझमें इस दृष्टि से देखने का साहस हो। बिना किसी स्वार्थ के यहाँ या यहाँ के बाद पुरस्कार की इच्छा के बिना, मैंने अनासक्त भाव से अपने जीवन को स्वतन्त्रता के ध्येय पर समर्पित कर दिया है, क्योंकि मैं और कुछ कर ही नहीं सकता था। जिस दिन हमें इस मनोवृत्ति के बहुत-से पुरुष और महिलाएँ मिल जायेंगे, जो अपने जीवन को मनुष्य की सेवा और पीड़ित मानवता के उद्धार के अतिरिक्त कहीं समर्पित कर ही नहीं सकते, उसी दिन मुक्ति के युग का शुभारम्भ होगा। वे शोषकों, उत्पीड़कों और अत्याचारियों को चुनौती देने के लिये उत्प्रेरित होंगे। इस लिये नहीं कि उन्हें राजा बनना है या कोई अन्य पुरस्कार प्राप्त करना है यहाँ या अगले जन्म में या मृत्योपरान्त स्वर्ग में। उन्हें तो मानवता की गर्दन से दासता का जुआ उतार फेंकने और मुक्ति एवं शान्ति स्थापित करने के लिये इस मार्ग को अपनाना होगा। क्या वे उस रास्ते पर चलेंगे जो उनके अपने लिये ख़तरनाक किन्तु उनकी महान आत्मा के लिये एक मात्र कल्पनीय रास्ता है। क्या इस महान ध्येय के प्रति उनके गर्व को अहंकार कहकर उसका गलत अर्थ लगाया जायेगा? कौन इस प्रकार के घृणित विशेषण बोलने का साहस करेगा? या तो वह मूर्ख है या धूर्त। हमें चाहिए कि उसे क्षमा कर दें, क्योंकि वह उस हृदय में उद्वेलित उच्च विचारों, भावनाओं, आवेगों तथा उनकी गहराई को महसूस नहीं कर सकता। उसका हृदय मांस के एक टुकड़े की तरह मृत है। उसकी आँखों पर अन्य स्वार्थों के प्रेतों की छाया पड़ने से वे कमज़ोर हो गयी हैं। स्वयं पर भरोसा रखने के गुण को सदैव अहंकार की संज्ञा दी जा सकती है। यह दुखपूर्ण और कष्टप्रद है, पर चारा ही क्या है?

आलोचना और स्वतन्त्र विचार एक क्रान्तिकारी के दोनों अनिवार्य गुण हैं। क्योंकि हमारे पूर्वजों ने किसी परम आत्मा के प्रति विश्वास बना लिया था। अतः कोई भी व्यक्ति जो उस विश्वास को सत्यता या उस परम आत्मा के अस्तित्व को ही चुनौती दे, उसको विधर्मी, विश्वासघाती कहा जायेगा। यदि उसके तर्क इतने अकाट्य हैं कि उनका खण्डन वितर्क द्वारा नहीं हो सकता और उसकी आस्था इतनी प्रबल है कि उसे ईश्वर के प्रकोप से होने वाली विपत्तियों का भय दिखा कर दबाया नहीं जा सकता तो उसकी यह कह कर निन्दा की जायेगी कि वह वृथाभिमानी है। यह मेरा अहंकार नहीं था, जो मुझे नास्तिकता की ओर ले गया। मेरे तर्क का तरीका संतोषप्रद सिद्ध होता है या नहीं इसका निर्णय मेरे पाठकों को करना है, मुझे नहीं। मैं जानता हूँ कि ईश्वर पर विश्वास ने आज मेरा जीवन आसान और मेरा बोझ हलका कर दिया होता। उस पर मेरे अविश्वास ने सारे वातावरण को अत्यन्त शुष्क बना दिया है। थोड़ा-सा रहस्यवाद इसे कवित्वमय बना सकता है। किन्तु मेरे भाग्य को किसी उन्माद का सहारा नहीं चाहिए। मैं यथार्थवादी हूँ। मैं अन्तः प्रकृति पर विवेक की सहायता से विजय चाहता हूँ। इस ध्येय में मैं सदैव सफल नहीं हुआ हूँ। प्रयास करना मनुष्य का कर्तव्य है। सफलता तो संयोग तथा वातावरण पर निर्भर है। कोई भी मनुष्य, जिसमें तनिक भी विवेक शक्ति है, वह अपने वातावरण को तार्किक रूप से समझना चाहेगा। जहाँ सीधा प्रमाण नहीं है, वहाँ दर्शन शास्त्र का महत्व है। जब हमारे पूर्वजों ने फ़ुरसत के समय विश्व के रहस्य को, इसके भूत, वर्तमान एवं भविष्य को, इसके क्यों और कहाँ से को समझने का प्रयास किया तो सीधे परिणामों के कठिन अभाव में हर व्यक्ति ने इन प्रश्नों को अपने ढ़ंग से हल किया। यही कारण है कि विभिन्न धार्मिक मतों में हमको इतना अन्तर मिलता है, जो कभी-कभी वैमनस्य तथा झगड़े का रूप ले लेता है। न केवल पूर्व और पश्चिम के दर्शनों में मतभेद है, बल्कि प्रत्येक गोलार्ध के अपने विभिन्न मतों में आपस में अन्तर है। पूर्व के धर्मों में, इस्लाम तथा हिन्दू धर्म में ज़रा भी अनुरूपता नहीं है। भारत में ही बौद्ध तथा जैन धर्म उस ब्राह्मणवाद से बहुत अलग है, जिसमें स्वयं आर्यसमाज व सनातन धर्म जैसे विरोधी मत पाये जाते हैं। पुराने समय का एक स्वतन्त्र विचारक चार्वाक है। उसने ईश्वर को पुराने समय में ही चुनौती दी थी। हर व्यक्ति अपने को सही मानता है। दुर्भाग्य की बात है कि बजाय पुराने विचारकों के अनुभवों तथा विचारों को भविष्य में अज्ञानता के विरुद्ध लड़ाई का आधार बनाने के हम आलसियों की तरह, जो हम सिद्ध हो चुके हैं, उनके कथन में अविचल एवं संशयहीन विश्वास की चीख पुकार करते रहते हैं और इस प्रकार मानवता के विकास को जड़ बनाने के दोषी हैं।

सिर्फ विश्वास और अन्ध विश्वास ख़तरनाक है। यह मस्तिष्क को मूढ़ और मनुष्य को प्रतिक्रियावादी बना देता है। जो मनुष्य अपने को यथार्थवादी होने का दावा करता है, उसे समस्त प्राचीन रूढ़िगत विश्वासों को चुनौती देनी होगी। प्रचलित मतों को तर्क की कसौटी पर कसना होगा। यदि वे तर्क का प्रहार न सह सके, तो टुकड़े-टुकड़े होकर गिर पड़ेगा। तब नये दर्शन की स्थापना के लिये उनको पूरा धराशायी करके जगह साफ करना और पुराने विश्वासों की कुछ बातों का प्रयोग करके पुनर्निमाण करना। मैं प्राचीन विश्वासों के ठोसपन पर प्रश्न करने के सम्बन्ध में आश्वस्त हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि एक चेतन परम आत्मा का, जो प्रकृति की गति का दिग्दर्शन एवं संचालन करता है, कोई अस्तित्व नहीं है। हम प्रकृति में विश्वास करते हैं और समस्त प्रगतिशील आन्दोलन का ध्येय मनुष्य द्वारा अपनी सेवा के लिये प्रकृति पर विजय प्राप्त करना मानते हैं। इसको दिशा देने के पीछे कोई चेतन शक्ति नहीं है। यही हमारा दर्शन है। हम आस्तिकों से कुछ प्रश्न करना चाहते हैं।

यदि आपका विश्वास है कि एक सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक और सर्वज्ञानी ईश्वर है, जिसने विश्व की रचना की, तो कृपा करके मुझे यह बतायें कि उसने यह रचना क्यों की? कष्टों और संतापों से पूर्ण दुनिया–असंख्य दुखों के शाश्वत अनन्त गठबन्धनों से ग्रसित! एक भी व्यक्ति तो पूरी तरह संतृष्ट नही है। कृपया यह न कहें कि यही उसका नियम है। यदि वह किसी नियम से बँधा है तो वह सर्वशक्तिमान नहीं है। वह भी हमारी ही तरह नियमों का दास है। कृपा करके यह भी न कहें कि यह उसका मनोरंजन है। नीरो ने बस एक रोम जलाया था। उसने बहुत थोड़ी संख्या में लोगों की हत्या की थी। उसने तो बहुत थोड़ा दुख पैदा किया, अपने पूर्ण मनोरंजन के लिये। और उसका इतिहास में क्या स्थान है? उसे इतिहासकार किस नाम से बुलाते हैं? सभी विषैले विशेषण उस पर बरसाये जाते हैं। पन्ने उसकी निन्दा के वाक्यों से काले पुते हैं, भर्त्सना करते हैं – नीरो एक हृदयहीन, निर्दयी, दुष्ट। एक चंगेज खाँ ने अपने आनन्द के लिये कुछ हजार जानें ले लीं और आज हम उसके नाम से घृणा करते हैं। तब किस प्रकार तुम अपने ईश्वर को न्यायोचित ठहराते हो? उस शाश्वत नीरो को, जो हर दिन, हर घण्टे ओर हर मिनट असंख्य दुख देता रहा, और अभी भी दे रहा है। फिर तुम कैसे उसके दुष्कर्मों का पक्ष लेने की सोचते हो, जो चंगेज खाँ से प्रत्येक क्षण अधिक है? क्या यह सब बाद में इन निर्दोष कष्ट सहने वालों को पुरस्कार और गलती करने वालों को दण्ड देने के लिये हो रहा है? ठीक है, ठीक है। तुम कब तक उस व्यक्ति को उचित ठहराते रहोगे, जो हमारे शरीर पर घाव करने का साहस इसलिये करता है कि बाद में मुलायम और आरामदायक मलहम लगायेगा? ग्लैडिएटर संस्था के व्यवस्थापक कहाँ तक उचित करते थे कि एक भूखे ख़ूंख़ूवार शेर के सामने मनुष्य को फेंक दो कि, यदि वह उससे जान बचा लेता है, तो उसकी खूब देखभाल की जायेगी? इसलिये मैं पूछता हूँ कि उस चेतन परम आत्मा ने इस विश्व और उसमें मनुष्यों की रचना क्यों की? आनन्द लूटने के लिये? तब उसमें और नीरो में क्या फर्क है?

तुम मुसलमानो और ईसाइयो! तुम तो पूर्वजन्म में विश्वास नहीं करते। तुम तो हिन्दुओं की तरह यह तर्क पेश नहीं कर सकते कि प्रत्यक्षत: निर्दोष व्यक्तियों के कष्ट उनके पूर्वजन्मों के कर्मों का फल है। मैं तुमसे पूछता हूँ कि उस सर्वशक्तिशाली ने शब्द द्वारा विश्व के उत्पत्ति के लिये छ: दिन तक क्यों परिश्रम किया? और प्रत्येक दिन वह क्यों कहता है कि सब ठीक है? बुलाओ उसे आज। उसे पिछ्ला इतिहास दिखाओ। उसे आज की परिस्थितियों का अध्ययन करने दो। हम देखेंगे कि क्या वह कहने का साहस करता है कि सब ठीक है। कारावास की काल–कोठरियों से लेकर झोपड़ियों की बस्तियों तक भूख से तड़पते लाखों इन्सानों से लेकर उन शोषित मज़दूरों से लेकर जो पूँजीवादी पिशाच द्वारा खून चूसने की क्रिया को धैर्यपूर्वक निरुत्साह से देख रहे हैं तथा उस मानवशक्ति की बर्बादी देख रहे हैं, जिसे देखकर कोई भी व्यक्ति, जिसे तनिक भी सहज ज्ञान है, भय से सिहर उठेगा, और अधिक उत्पादन को ज़रूरतमन्द लोगों में बाँटने के बजाय समुद्र में फेंक देना बेहतर समझने से लेकर राजाओं के उन महलों तक जिनकी नींव मानव की हड्डियों पर पड़ी है– उसको यह सब देखने दो और फिर कहे – सब कुछ ठीक है! क्यों और कहाँ से? यही मेरा प्रश्न है। तुम चुप हो। ठीक है, तो मैं आगे चलता हूँ।

और तुम हिन्दुओ, तुम कहते हो कि आज जो कष्ट भोग रहे हैं, ये पूर्वजन्म के पापी हैं और आज के उत्पीड़क पिछले जन्मों में साधु पुरुष थे, अत: वे सत्ता का आनन्द लूट रहे हैं। मुझे यह मानना पड़ता है कि आपके पूर्वज बहुत चालाक व्यक्ति थे। उन्होंने ऐसे सिद्धान्त गढ़े, जिनमें तर्क और अविश्वास के सभी प्रयासों को विफल करने की काफ़ी ताकत है। न्यायशास्त्र के अनुसार दण्ड को अपराधी पर पड़ने वाले असर के आधार पर केवल तीन कारणों से उचित ठहराया जा सकता है। वे हैं–प्रतिकार, भय तथा सुधार। आज सभी प्रगतिशील विचारकों द्वारा प्रतिकार के सिद्धान्त की निन्दा की जाती है। भयभीत करने के सिद्धान्त का भी अन्त वहीं है। सुधार करने का सिद्धान्त ही केवल आवश्यक है और मानवता की प्रगति के लिये अनिवार्य है। इसका ध्येय अपराधी को योग्य और शान्तिप्रिय नागरिक के रूप में समाज को लौटाना है। किन्तु यदि हम मनुष्यों को अपराधी मान भी लें, तो ईश्वर द्वारा उन्हें दिये गये दण्ड की क्या प्रकृति है? तुम कहते हो वह उन्हें गाय, बिल्ली, पेड़, जड़ी–बूटी या जानवर बनाकर पैदा करता है। तुम ऐसे 84 लाख दण्डों को गिनाते हो। मैं पूछता हूँ कि मनुष्य पर इनका सुधारक के रूप में क्या असर है? तुम ऐसे कितने व्यक्तियों से मिले हो, जो यह कहते हैं कि वे किसी पाप के कारण पूर्वजन्म में गधा के रूप में पैदा हुए थे? एक भी नहीं? अपने पुराणों से उदाहरण न दो। मेरे पास तुम्हारी पौराणिक कथाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। और फिर क्या तुम्हें पता है कि दुनिया में सबसे बड़ा पाप गरीब होना है। गरीबी एक अभिशाप है। यह एक दण्ड है। मैं पूछता हूँ कि दण्ड प्रक्रिया की कहाँ तक प्रशंसा करें, जो अनिवार्यत: मनुष्य को और अधिक अपराध करने को बाध्य करे? क्या तुम्हारे ईश्वर ने यह नहीं सोचा था या उसको भी ये सारी बातें मानवता द्वारा अकथनीय कष्टों के झेलने की कीमत पर अनुभव से सीखनी थीं? तुम क्या सोचते हो, किसी गरीब या अनपढ़ परिवार, जैसे एक चमार या मेहतर के यहाँ पैदा होने पर इन्सान का क्या भाग्य होगा? चूँकि वह गरीब है, इसलिये पढ़ाई नहीं कर सकता। वह अपने साथियों से तिरस्कृत एवं परित्यक्त रहता है, जो ऊँची जाति में पैदा होने के कारण अपने को ऊँचा समझते हैं। उसका अज्ञान, उसकी गरीबी तथा उससे किया गया व्यवहार उसके हृदय को समाज के प्रति निष्ठुर बना देते हैं। यदि वह कोई पाप करता है तो उसका फल कौन भोगेगा? ईष्वर, वह स्वयं या समाज के मनीषी? और उन लोगों के दण्ड के बारे में क्या होगा, जिन्हें दम्भी ब्राह्मणों ने जानबूझ कर अज्ञानी बनाये रखा तथा जिनको तुम्हारी ज्ञान की पवित्र पुस्तकों – वेदों के कुछ वाक्य सुन लेने के कारण कान में पिघले सीसे की धारा सहन करने की सजा भुगतनी पड़ती थी? यदि वे कोई अपराध करते हैं, तो उसके लिये कौन ज़िम्मेदार होगा? और उनका प्रहार कौन सहेगा? मेरे प्रिय दोस्तों! ये सिद्धान्त विशेषाधिकार युक्त लोगों के आविष्कार हैं। ये अपनी हथियाई हुई शक्ति, पूँजी तथा उच्चता को इन सिद्धान्तों के आधार पर सही

ठहराते हैं। अपटान सिंक्लेयर ने लिखा था कि मनुष्य को बस अमरत्व में विश्वास दिला दो और उसके बाद उसकी सारी सम्पत्ति लूट लो। वह बगैर बड़बड़ाये इस कार्य में तुम्हारी सहायता करेगा। धर्म के उपदेशकों तथा सत्ता के स्वामियों के गठबन्धन से ही जेल, फाँसी, कोड़े और ये सिद्धान्त उपजते हैं।

मैं पूछता हूँ तुम्हारा सर्वशक्तिशाली ईश्वर हर व्यक्ति को क्यों नहीं उस समय रोकता है जब वह कोई पाप या अपराध कर रहा होता है? यह तो वह बहुत आसानी से कर सकता है। उसने क्यों नहीं लड़ाकू राजाओं की लड़ने की उग्रता को समाप्त किया और इस प्रकार विश्वयुद्ध द्वारा मानवता पर पड़ने वाली विपत्तियों से उसे बचाया? उसने अंग्रेजों के मस्तिष्क में भारत को मुक्त कर देने की भावना क्यों नहीं पैदा की? वह क्यों नहीं पूँजीपतियों के हृदय में यह परोपकारी उत्साह भर देता कि वे उत्पादन के साधनों पर अपना व्यक्तिगत सम्पत्ति का अधिकार त्याग दें और इस प्रकार केवल सम्पूर्ण श्रमिक समुदाय, वरन समस्त मानव समाज को पूँजीवादी बेड़ियों से मुक्त करें? आप समाजवाद की व्यावहारिकता पर तर्क करना चाहते हैं। मैं इसे आपके सर्वशक्तिमान पर छोड़ देता हूँ कि वह लागू करे। जहाँ तक सामान्य भलाई की बात है, लोग समाजवाद के गुणों को मानते हैं। वे इसके व्यावहारिक न होने का बहाना लेकर इसका विरोध करते हैं। परमात्मा को आने दो और वह चीज को सही तरीके से कर दे। अंग्रेजों की हुकूमत यहाँ इसलिये नहीं है कि ईश्वर चाहता है बल्कि इसलिये कि उनके पास ताकत है और हममें उनका विरोध करने की हिम्मत नहीं। वे हमको अपने प्रभुत्व में ईश्वर की मदद से नहीं रखे हैं, बल्कि बन्दूकों, राइफलों, बम और गोलियों, पुलिस और सेना के सहारे। यह हमारी उदासीनता है कि वे समाज के विरुद्ध सबसे निन्दनीय अपराध – एक राष्ट्र का दूसरे राष्ट्र द्वारा अत्याचार पूर्ण शोषण – सफलतापूर्वक कर रहे हैं। कहाँ है ईश्वर? क्या वह मनुष्य जाति के इन कष्टों का मज़ा ले रहा है? एक नीरो, एक चंगेज, उसका नाश हो!

क्या तुम मुझसे पूछते हो कि मैं इस विश्व की उत्पत्ति तथा मानव की उत्पत्ति की व्याख्या कैसे करता हूँ? ठीक है, मैं तुम्हें बताता हूँ। चार्ल्स डारविन ने इस विषय पर कुछ प्रकाश डालने की कोशिश की है। उसे पढ़ो। यह एक प्रकृति की घटना है। विभिन्न पदार्थों के, नीहारिका के आकार में, आकस्मिक मिश्रण से पृथ्वी बनी। कब? इतिहास देखो। इसी प्रकार की घटना से जन्तु पैदा हुए और एक लम्बे दौर में मानव। डार्विन की 'जीव की उत्पत्ति' पढ़ो। और तदुपरान्त सारा विकास मनुष्य द्वारा प्रकृति के लगातार विरोध और उस पर विजय प्राप्त करने की चेष्टा से हुआ। यह इस घटना की सम्भवतः सबसे सूक्ष्म व्याख्या है।

तुम्हारा दूसरा तर्क यह हो सकता है कि क्यों एक बच्चा अन्धा या लंगड़ा पैदा होता है? क्या यह उसके पूर्वजन्म में किये गये कार्यों का फल नहीं है? जीवविज्ञान वेत्ताओं ने इस समस्या का वैज्ञानिक समाधान निकाल लिया है। अवश्य ही तुम एक और बचकाना प्रश्न पूछ सकते हो। यदि ईश्वर नहीं है, तो लोग उसमें विश्वास क्यों करने लगे? मेरा उत्तर सूक्ष्म तथा स्पष्ट है। जिस प्रकार वे प्रेतों तथा दुष्ट आत्माओं में विश्वास करने लगे। अन्तर केवल इतना है कि ईश्वर में विश्वास विश्वव्यापी है और दर्शन अत्यन्त विकसित। इसकी उत्पत्ति का श्रेय उन शोषकों की प्रतिभा को है, जो परमात्मा के अस्तित्व का उपदेश देकर लोगों को अपने प्रभुत्व में रखना चाहते थे तथा उनसे अपनी विशिष्ट स्थिति का अधिकार एवं अनुमोदन चाहते थे। सभी धर्म, समप्रदाय, पन्थ और ऐसी अन्य संस्थाएँ अन्त में निर्दयी और शोषक संस्थाओं, व्यक्तियों तथा वर्गों की समर्थक हो जाती हैं। राजा के विरुद्ध हर विद्रोह हर धर्म में सदैव ही पाप रहा है।

मनुष्य की सीमाओं को पहचानने पर, उसकी दुर्बलता व दोष को समझने के बाद परीक्षा की घड़ियों में मनुष्य को बहादुरी से सामना करने के लिये उत्साहित करने, सभी ख़तरों को पुरुषत्व के साथ झेलने तथा सम्पन्नता एवं ऐश्वर्य में उसके विस्फोट को बाँधने के लिये ईश्वर के काल्पनिक अस्तित्व की रचना हुई। अपने व्यक्तिगत नियमों तथा अभिभावकीय उदारता से पूर्ण ईश्वर की बढ़ा-चढ़ा कर कल्पना एवं चित्रण किया गया। जब उसकी उग्रता तथा व्यक्तिगत नियमों की चर्चा होती है, तो उसका उपयोग एक भय दिखाने वाले के रूप में किया जाता है। ताकि कोई मनुष्य समाज के लिये ख़तरा न बन जाये। जब उसके अभिभावक गुणों की व्याख्या होती है, तो उसका उपयोग एक पिता, माता, भाई, बहन, दोस्त तथा सहायक की तरह किया जाता है। जब मनुष्य अपने सभी दोस्तों द्वारा विश्वासघात तथा त्याग देने से अत्यन्त क्लेष में हो, तब उसे इस विचार से सान्त्वना मिल सकती हे कि एक सदा सच्चा दोस्त उसकी सहायता करने को है, उसको सहारा देगा तथा वह सर्वशक्तिमान है और कुछ भी कर सकता है। वास्तव में आदिम काल में यह समाज के लिये उपयोगी था। पीड़ा में पड़े मनुष्य के लिये ईश्वर की कल्पना उपयोगी होती है। समाज को इस विश्वास के विरुद्ध लड़ना होगा। मनुष्य जब अपने पैरों पर खड़ा होने का प्रयास करता है तथा यथार्थवादी बन जाता है, तब उसे श्रद्धा को एक ओर फेंक देना चाहिए और उन सभी कष्टों, परेशानियों का पुरुषत्व के साथ सामना करना चाहिए, जिनमें परिस्थितियाँ उसे पटक सकती हैं। यही आज मेरी स्थिति है। यह मेरा अहंकार नहीं है, मेरे दोस्त! यह मेरे सोचने का तरीका है, जिसने मुझे नास्तिक बनाया है। ईश्वर में विश्वास और रोज़-ब-रोज़ की प्रार्थना को मैं मनुष्य के लिये सबसे स्वार्थी और गिरा हुआ काम मानता हूँ। मैंने उन नास्तिकों के बारे में पढ़ा हे, जिन्होंने सभी विपदाओं का बहादुरी से सामना किया। अतः मैं भी एक पुरुष की भाँति फाँसी के फन्दे की अन्तिम घड़ी तक सिर ऊँचा किये खड़ा रहना चाहता हूँ।

हमें देखना है कि मैं कैसे निभा पाता हूँ। मेरे एक दोस्त ने मुझे प्रार्थना करने को कहा। जब मैंने उसे नास्तिक होने की बात बतायी तो उसने कहा, 'अपने अन्तिम दिनों में तुम विश्वास करने लगोगे।' मैंने कहा, 'नहीं, प्यारे दोस्त, ऐसा नहीं होगा। मैं इसे अपने लिये अपमानजनक तथा भ्रष्ट होने की बात समझाता हूँ। स्वार्थी कारणों से मैं प्रार्थना नहीं करूँगा।' पाठकों और दोस्तों, क्या यह अहंकार है? अगर है तो मैं स्वीकार करता हूँ।

5 मार्च 2023 को हरियाणा राज्य के जिला हिसार के गांव डोभी में तर्कशील सोसाइटी को एक चैलेंज मिला हुआ था कुछ समय पहले तर्कशील सोसाइटी की जानकारी में यह बात आई कि व्हिज्डम ऑफ माइंड नाम की संस्था एक ट्रेनिंग प्रोग्राम चलाती है जिसमें बच्चों को आंख बंद करके पढ़ना सिखाया जाता है और वह इस प्रकार के कार्यक्रम कई जगह आयोजित करते हैं जिसमें बच्चे आंख पर पट्टी बांधकर पढ़कर लोगों के सामने दिखाते हैं और लोगों को यह लगता है कि बच्चे विशेष प्रतिभा के धनी हो जाते हैं और उनकी कोई तीसरी आंख जागृत हो जाती है या कोई छठी इंद्री जागृत हो जाती है या उनका मिड ब्रेन जागृत हो जाता है इस तरह के भ्रम फैलाकर वह लोगों को लूटने का काम करते हैं। जब यह जानकारी तर्कशील सोसायटी के सदस्यों को पता लगी तो उन्होंने विजडम ऑफ माइंड को चैलेंज किया की अगर उनके द्वारा प्रशिक्षित बच्चा आंख बंद करके पढ़ सकता है तो वह विजडम माइंड को इनाम के रूप में एक लाख देंगे। उक्त चैलेंज को विजडम ऑफ माइंड संस्था ने स्वीकार कर लिया और सिक्योरिटी के रूप में दस हजार रुपए की राशि जमा भी करवा दी थी। तर्कशील सोसायटी की तरफ से भी उनको एक लाख रुपए का चेक जमा करवा दिया गया था। इसके बाद कार्यक्रम की शुरुआत हुई और उनके द्वारा निर्धारित एक बच्चा जो लड़का था उसको आंख बंद करके पढ़ने के लिए कहा गया बच्चे ने काफी कोशिश की लेकिन वह नहीं पढ़ पाया इस प्रकार उनका प्रयास असफल रहा। इसके बाद उन्होंने कहा कि बच्चे की आंखों पर दवाब आ गया है। इस कारण बच्चा पढ़ नहीं पा रहा है। इसके बाद विजडम ऑफ माइंड संस्था के द्वारा एक बच्ची को प्रस्तुत किया गया और उन्होंने कहा कि यह बच्ची पढ़कर दिखाएगी। लेकिन जब तर्कशील सोसायटी के सदस्यों ने बच्ची की आंखों पर पट्टी बांधी तो वह कई प्रकार के बहाने बनाने लगी कि उसकी आंखों पर दबाब आ रहा है उसकी नशे खींच रही हैद्य बीच में जब विजडम माइंड के सदस्यों ने खुद अपने तरीके से पट्टी बांधी तो बच्ची ने कुछ शब्द पढ़ के दिखा दिए द्य लेकिन तर्कशील सोसायटी ने पहले ही कह दिया था कि पट्टी हम अपने तरीके से ही बांधेंगे। जब दोबारा से चश्मा लगाया गया जिसमें रूई डाली गई थी तो बच्ची ने फिर कहा की उसके दिमाग पर स्ट्रेस आ रहा है। और इस प्रकार वह पढ़ नहीं पाई। इसके बाद विजडम ऑफ माइंड के सदस्यों ने कहा कि आज बच्ची को दिक्कत हो गई है इसलिए यह पढ़ नहीं पाई है उन्होंने तर्कशील सोसायटी से निवेदन किया कि हमें 10 दिन का समय दिया जाए उसके बाद यह बच्ची आप को पढ़कर दिखा देगी। इस प्रकार की शर्त विजडम माइंड हार गई और उनके द्वारा जमा की गई राशि तर्कशील सोसायटी को दे दी गई। अब उन्होंने 10 दिन बाद का समय लिया है और कहा है कि वह अब की बार सिक्योरिटी राशि एक लाख रुपए जमा करवाएंगे और अगर बच्चा पढ़ कर दिखा देता है तो एक लाख रुपए तर्कशील सोसायटी उन्हें इनाम में देगी।आज इस मौके पर गांव डोभी के सरपंच आजाद सिंह, तर्कशील सोसायटी हरियाणा के प्रधान श्री फरियाद सिंह, अजय एडवोकेट भुना, रमेश चमारखेड़ा, सुरेश आर्य, मास्टर गोरा सिंह, मास्टर प्रहलाद सिंह, मास्टर हरपाल, मास्टर प्रमोद डोभी, मास्टर सुभाष तर्कशील ढाणी मोहब्बतपुर, चूली बागड़ियां के सरपंच प्रतिनिधि सोनू बेनीवाल, मास्टर राजेश बेनीवाल, गांव घुरसाल के सरपंच, सहित लगभग 200 व्यक्ति उपस्थित थे।

... सुभाष तर्कशील

तर्कशील लहर: बढ़ते कदम

9 जनवरी 2023 से 11 जनवरी 2023 तक विजयवाड़ा, आंध्रप्रदेश में आयोजित अंतरराष्ट्रीय नास्तिक सम्मेलन में उपस्थित प्रतिनिधि

भारत की तर्कशील लहर का मूल्यांकन करने के लिए तर्कशील भवन, बरनाला पहुंचे फ्रीडम फ्रॉम रिलीजन फाउंडेशन के उप प्रधान डॉन बार्कर एंव संचार निदेशक अमिताभ पाल साथ मे तर्कशील सोसायटी पंजाब की राज्य कार्यकारिणी 1.मेहमानों के सम्मान की झलक, 2.तर्कशील साहित्य वाहन के साथ मेहमान एंव राज्य प्रतिनिधि

कृष्ण बरगाड़ी स्मृति सम्मान 2023 को बरनाला (पंजाब) की झलकियां, स्मृति सम्मान एंव उपस्थित दर्शक

If undelivered please return to :

Tarksheel

Tarksheel Bhawan, Tarksheel Chowk,
Sanghera By Pass, BARNALA-148101
Post Box No. 55
Cell. 98769 53561, 98728 74620
Web : www.tarksheel.org
e-mail : tarkshiloffice@gmail.com

BOOK POST
(Printed Matter)

To ....

....

....